भारत के गौरव

सम्पादक :

हरपतराय टांटिया

प्रकाशक

अग्रोहा विकास ट्रस्ट

इकाई : श्रीगंगानगर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण- 2005

द्वितीय संस्करण- जनवरी 2006

तृतीय संस्करण- जनवरी 2015

प्रकाशक - अग्रोहा विकास ट्रस्ट, इकाई : श्रीगंगानगर
अग्रसेन भवन, मॉडल कॉलोनी
श्रीगंगानगर-335001

मुद्रक- सिटी कम्प्यूटर्स
कोठारी मार्केट, श्रीगंगानगर
मोबाइल 93092-69988

मूल्य- पच्चीस रूपए मात्र

सम्पादक- हरपतराय टांटिया
पी-2, आनन्द विहार
श्रीगंगानगर-335001
मो. 94144-52702

****

प्रस्तावना

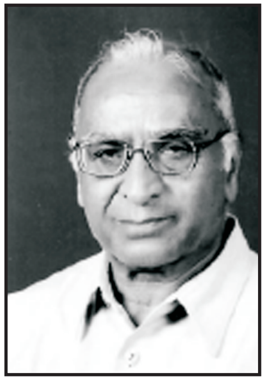

अग्रोहा विकास ट्रस्ट की श्रीगंगानगर इकाई द्वारा अग्रवाल समाज की 18 महान विभूतियों के जीवन एवं कार्यकलापों के सम्बंध में तथ्यपूर्ण तथ्यों से सरोबार प्रकाशित पुस्तक ''भारत के गौरव'' का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया। यों तो महान पुरूष किसी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय अथवा क्षेत्र विशेष की बपौती नहीं होते तथा ऐसे पुरूष कहीं भी, किसी भी काल में तथा किसी भी जाति अथवा धर्म में जन्म ले सकते हैं, किन्तु कुछ समाज ऐसे हैं, जिनके नैसर्गिक संस्कार, विचार, शाश्वत जीवन आदर्श, मान्यताएं एवं उद्दात्त जीवन व्यवहार उन्हें अन्य समाजों से पृथक् पहचान प्रदान करते है। अग्रवाल समाज भारतवर्ष का एक ऐसा ही सुसंस्कारित एवं कर्मनिष्ठ समाज है, जिसने न केवल भारतवर्ष को वरन् सम्पूर्ण विश्व को उद्योग, वाणिज्य, व्यापार, कृषि, शिक्षा, विधि न्याय, पत्रकारिता, प्रशासन, धर्म तथा संस्कृति, अर्थनीति, राजनीति तथा समाजसेवा के क्षेत्र में इतना कुछ दिया है कि उसकी देश एवं विदेश में एक विशिष्ट पहचान बन गयी है।

कुछ लोग जन्म से ही महान होते है, कुछ अपने सत्चरित्र एवं कार्यकलापों से महान बन जाते है और कुछ पर महानता थोप दी जाती है। अग्रोहा विकास ट्रस्ट की श्रीगंगानगर इकाई द्वारा प्रकाशित इस संस्करण में अग्रवाल समाज की जिन 9 महान विभूतियों के जीवन, चरित्र एवं कार्यकलापों का समावेश किया गया है, उन्होंने देश के जन-जीवन को अपनी विशिष्ट उपलब्धियों एवं असाधारण योगदान के कारण असाधारण रूप से प्रभावित किया हैं, चाहे वो क्षेत्र राजनीति का रहा हो अथवा शिक्षा, अभियान्त्रिकी, धर्म एवं संस्कृति, स्वतंत्रता आन्दोलन अथवा साहित्य सृजन का क्षेत्र रहा हो, कोई भी समाज अपनी इन असाधारण उपलब्धियों एवं उनके जनक महान विभूतियों पर सहज ही गर्व कर सकता है।

मैं मुक्त कण्ठ से इस स्तुतीय प्रयास की सराहना करता हूं तथा इस प्रकाशन के सूत्रधारों विशेषतः श्री हरपतराय टांटिया जो स्वयं में समाजसुधार के लिए एक सजीव आन्दोलन है, डॉ. चम्पालाल गुप्त जो अपनी सशक्त लेखनी द्वारा अग्रवाल समाज के सामाजिक संगठन को दृढ़ता प्रदान करने के लिए निःस्वार्थ भाव से कार्य कर रहे हैं तथा अध्यक्ष इंजी. आर.एन. गोयल, श्री सुरेश गर्ग महामंत्री एवं सुभाष बंसल कोषाध्यक्ष की विशेष रूप से सराहना करता हूं कि उन्होंने यह अभिनव प्रयास कर समाज को नयी दिशा प्रदान करने का श्लाघनीय कार्य किया है। ईश्वर उनके सद्प्रयासों को अपना शुभाशीर्वाद दे और वे और अधिक उत्साहपूर्वक समाज की सेवा कर सके, ऐसी हार्दिक मंगलकामना करता हूं।

– **रमेश चन्द्र गुप्ता**, आर.ए.एस., सेवानिवृत

****

अनुक्रमणिका

1.	युग प्रवर्तक महाराजा अग्रसेन	5-14
2.	भारत रत्न डॉ. भगवान दास	15-17
3.	शेरे-पंजाब लाला लाजपतराय	18-21
4.	युग पुरूष राममनोहर लोहिया	22-28
5.	डॉ. कंवरसेन	29-31
6.	सर गंगाराम	32-35
7.	हनुमान प्रसाद पोद्दार	36-41
8.	राष्ट्रभक्त सेठ जमनालाल बजाज	42-47
9.	अग्रकुल शिरोमणी राजा टोडरमल	48-54
10.	महान क्राान्तिकारी मास्टर अमीरचन्द	55-59
11.	श्री ईश्वर चन्द जालान	60-64
12.	ज्योतिप्रसाद अग्रवाल	65-68
13.	लाला मटोल चन्द अग्रवाल	69-71
14.	लाला हुकमचंद जैन	72-74
15.	लाला झनकुमल अग्रवाल	75-76
16.	हंसराज	77-78
17.	लाला हरदेव सहाय	79-86
18.	जगत सेठ रामजी दास गुड़वाला	87-88
19.	सेठ मिर्जामल पोद्दार	89-92
20.	रामजस शिक्षण संस्थान	93-95
21.	बंसल क्लॉसेज, कोटा	95-96

युग प्रवर्तक महाराजा अग्रसेन

अग्रोहा और अग्रसेन

अग्रोहा के साथ महाराजा अग्रसेन का नाम गहन रूप से जुड़ा है। वे अग्रोहा राज्य के संस्थापक ही नहीं, अपितु उन महान विभूतियों में थे, जो अपने सर्वजनहिताय कृत्यों द्वारा युग-युग तक अमर हो जाते हैं। संस्कृत में एक कहावत है- कीर्ति यस्य: स जीवति (जिसका यश है, वही जीवित है)। कीट-पतंगों की तरह इस विश्वरूपी रंगमंच पर प्राणी आते हैं, चले जाते हैं। जातियां उत्पन्न और विकसित होती हैं और काल के गाल में समा जाती हैं। यदि कुछ शेष रहता है तो उनके कार्यों की यश गाथा। इसी प्रकार की अमर विभूति थे- महाराजा अग्रसेन।

महाराजा अग्रसेन हजारों वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए, किन्तु आज भी अपनी प्रजावत्सलता, धार्मिकता, न्याय दानशीलता, लोकोपेकारी प्रवृत्तियों और श्रेष्ठ आदर्शों के कारण अमर हैं। आज के इस प्रगतिशील और विश्वबंधुत्व की भावना से ओत-प्रोत वैज्ञानिक युग में विकसित शासन प्रणालियां भी नवांगतुक को एक ईंट तथा एक रुपया देकर अपने ही समान बना लेने की शासन प्रणाली को विकसित करने में सक्षम नहीं हो सकी है, जबकि उस युग में महाराजा अग्रसेन ने सहकारिता और समता के आधार पर भेदभाव रहित एक आदर्श समाज और राज्य की रचना कर इतिहास में अपना गौरवान्वित स्थान बनाने में सफलता प्राप्त की। वास्तव में महाराजा अग्रसेन के गुणों, आदर्शों व महान कार्यों को जाति व काल की सीमाओं में आबद्ध नहीं किया जा सकता। वे अपने सत्कार्यों द्वारा समस्त मानव जाति को युगों-युगों तक प्रेरणा देते रहेंगे।

अधिकांश प्राचीन महापुरुषों का अवतरण, अस्तित्व और उनका कार्यकाल ऐतिहासिक प्रमाणों एवं तथ्यों के अभाव में विवादास्पद रहता आया है। खेद है कि प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की क्रमबद्ध परम्परा के न होने एवं विदेशी आक्रांताओं द्वारा इतिहास की अधिकांश सामग्री नष्ट अथवा क्षतविक्षत कर दिए जाने के कारण अनेक अमूल्य तथ्य नष्ट हो गए अथवा उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में पुरातत्व अवशेषों,

लोकगाथाओं, जनश्रुतियों और किंवदंतियों के द्वारा जो जानकारी प्राप्त होती है, उसी के माध्यम से महापुरुषों के जीवन, कार्यों, उपलब्धियों आदि का मूल्यांकन संभव होता है।

महाराजा अग्रसेन के संबध में भी कोई विशेष ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलते। उनका उल्लेख महालक्ष्मीव्रत कथा, श्री मद्भागवत के उपाख्यान उरूचरितम, जनश्रुतियों तथा प्राचीन संग्रहीत वंशावलियों में ही मिलता है। उनकी प्रामाणिकता के संबंध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त की मान्यता है कि अग्रवंश वैश्यानुकीर्तनम् प्रक्षिप्त ग्रंथ है तथा उरूचरितम् की प्रमाणिकता संदिग्ध है किन्तु डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार का मत है कि अग्रवंशवैश्यानुकीर्तनम तथा उरूचरितम् दोनों ही ग्रंथ वैश्यकाल की प्राचीन अनुश्रुति पर आधारित हैं जिनकी कल्पना और निर्माण कोई कुशल पंडित नहीं कर सकता। अत: जब तक महालक्ष्मी व्रत कथा के विरुद्ध कोई ठोस साक्ष्य नहीं मिल जाता, तब तक उसे अप्रमाणिक मानना तर्कसंगत नहीं है। दोनों ही ग्रंथों में जिन मान्यताओं, परम्पराओं का उल्लेख मिलता है, वे हजारों वर्ष बाद आज भी अग्रवालों की रीति-रिवाज और संस्कारों का अंग बनी हुई हैं। अत: उन पर अविश्वास का कारण नहीं है। यह सुनिश्चित है कि प्राचीन समय में आग्रेयगण (अग्रोहा) का अस्तित्व था और उसकी स्थापना अग्र या अग्रसेन नामक किसी राजा ने की थी। अत: अग्रसेन का अस्तित्व स्वयं प्रमाणित है। हो सकता है, अग्रोहा के थेहों की खुदाई से इस प्रकार के अन्य प्रमाण भी मिल जाए किंतु इस प्रकार के प्रमाणों के अभाव में महाराजा अग्रसेन का अस्तित्व नकारनास त्यक ेइ ुठलानाम ात्रह ै।अ ग्रसेनके स ंबंधम ेंज ोग ाथाएं,अ नुश्रुतियां, लोककथाएं प्रचलित हैं, वे उनके अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं और उन्हें अविश्वसनीय मानना भारत की महान परम्पराओं को विस्मृत करना है। ये गाथाएं प्राचीन इतिहास की अनमोल थाती अपने में संजोये हैं और इसी संदर्भ में महाराजा अग्रसेन ऐतिहासिक पुरुष हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सबसे पहले महाराजा अग्रसेन का जीवन चरित्र लिखते हुए अग्रवालों की उत्पत्ति नामक एक लघु पुस्तिका लिखी। इसका आधार उन्होंने भविष्यपुराणोक्त महालक्ष्मी व्रत कथा को बनाया, जो उनके कथनानुसार उन्हें एक पुस्तकालय में मिली थी। डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ने उसी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि महालक्ष्मी व्रत कथा के नायक राजा अग्र हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यही राजा अग्र बाद में अग्रसेन के नाम से पुकारे जाने लगे। इसी अग्रनाम के कारण उनके वंश का नाम अग्रवंश पड़ा होगा और उन्होंने जो नगर बसाया, उनका नाम भी बाद में आग्रेय ही पड़ा।

जन्म

महालक्ष्मी व्रत कथा के अनुसार महाराजा अग्रसेन का जन्म प्रतापनगर के राजा धनपाल के वंश की छटी पीढ़ी में राजा वल्लभ के घर हुआ। उनके जन्मते ही सारे राज्य में अपूर्व आनंद छा गया। वंदनवार बंधे, ध्वजा फहराई गई, बाजे बजने लगे और घर-घर बधाइयां दी जाने लगीं। स्त्रियों ने मंगलाचरण किए। मिठाइयां बांटी गईं और प्रजा ने एक नए आनंद और उल्लास का अनुभव किया। ब्राह्मणों ने राजपुत्र को चक्रवर्ती होने का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार कई दिनों तक निरंतर राज्य में हर्षोल्लास चलता रहा। जन्म के 12वें दिन शिशु का नामकरण हुआ। नाम अग्र रखा गया। इसी खुशी में महाराजा वल्लभ ने यमुना नदी के किनारे एक नये नगर की स्थाना की, जिसका नाम अग्रपुर रखा गया, जो बाद में आगरा नाम से प्रसिद्ध हुआ। अग्रसेन का लालन-पालन बड़े लाड़-चाव के वातावरण में हुआ। वे बचपन से ही बड़े प्रतिभाशाली थे। बड़े होने पर प्राचीन शिक्षा प्रणालीके अ नुसारउ नकीं शक्षाक ाप्रबंधं कयाग या।अ ग्रसेनन े ब चपनम ें ह ी वेदशास्त्र, अस्त्र-शस्त्र, राजनीति, अर्थनीति आदि का ज्ञान प्राप्त किया। वे सभी विद्याओं में पारंगत थे।

विवाह

सब प्रकार से सुयोग्य होने पर महाराजा अग्रसेन का विवाह हुआ। उनके विवाह के संबंध में जो कथा मिली है, वह इस प्रकार है-

एक समय नागलोक से नागों का राजा कुमुद अपनी कन्या माधवी को लेकर भूलोक में आया। इन्द्र ने उसे चाहा और उसने नागराज से वह कन्या मांगी, पर नागराज ने सब प्रकार से अग्रसेन को सुयोग्य जानकर उसका विवाह अग्रसेन से कर दिया। यही माधवी अग्रवालों में पूजनीय है और माता के समान उसकी प्रतिष्ठा है। सुप्रतिष्ठित नागवंश से संबंधित होने के कारण अग्रवाल लोग आज भी सर्पों को मामा कहते हैं। उनके घरों में नाग पंचमी के दिन सर्पों की पूजा होती है और उन्हें दूध पिलाया जाता है। विवाह के समय सांप के फन के आकार की चुण्डी बांधी जाती है। यह नाग जाति कौन थी और उसका मानव जाति से क्या संबंध था, इस विषय में हम आगे अलग से प्रकाश डालेंगे, किन्तु यह तथ्य सुनिश्चित है कि महाराजा अग्रसेन का विवाह एक महान वैभवशाली नागवंश में अत्यंत ही रूपवान, गुणशील कन्या के साथ हुआ। इस वैवाहिक संबंध के कारण महाराजा अग्रसेन और देवराज इन्द्र के मध्य शत्रुता हो गई। ब्रह्मा ने बीच में पड़ युद्ध को रोका।

ऐतिहासिक तथ्यों से यह निर्विवाद प्रमाणित हो गया कि नागजाति भारत की अत्यंत शक्तिशाली जातियों में से एक थी। इस जाति में अनेक वंश हुए, जिन्होंने देश के विभिन्न भागों में शासन किया। ये नागवंशीय राजा वास्तव में मनुष्य ही थे, न कि जानवर विशेष, जैसा कि किंवदंतियों में पाया जाता है।

देवराज इन्द्र के साथ यह युद्ध की घटना कुछ अटपटी सी लगती है। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में इस प्रकार की अलौकिक घटनाएं भरी पड़ी हैं। अत: इसका तार्किक विश्लेषण उपयुक्त होगा। इन्द्र वायु लोक का राजा है, जिसके अधीन वर्षा का होना माना गया है। भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि का संबंध सदा वर्षा से रहा है। अतिवृष्टि या अनावृष्टि से यहां दुर्भिक्ष या अकाल जैसी स्थिति उत्पन्न होती रहती है। महाराजा अग्रसेन के राज्य में भी इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने पर उन्होंने दृढ़तापूर्वक अकाल या दुर्भिक्ष का सामना किया। इसे ही सांकेतिक या प्रतीक रूप में इन्द्र से युद्ध कहा जा सकता है।

श्री सालिक राम अग्रवाल के शब्दों में यह युद्ध आज भी चल रहा है। अनावर्षण, अतिवृष्टि आदि की स्थिति में बांध, नहर आदि से उन पर किसी न किसी रूप्में विजय प्राप्त होती है। राजा अग्रसेन के राज्य में अकाल पड़ा, उन्होंने अकाल पर विजय पाई, यही इन्द्र से युद्ध और सन्धि का तात्पर्य है।

महाराजा अग्रसेन का काल

अग्रसेन उपाख्यानम् एवं उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि महाराजा अग्रसेन महाभारत के समकालीन थे। उनका काल द्वापर का अंतिम चरण और कलियुग का प्रारंभ था। इस संबंध में महाभारत के निम्न श्लोक को उद्धृत किया जा सकता है, जो राजा कर्ण के दिग्विजय प्रसंग में आया है-

भद्रान, रोहितकांश्चैव आग्रेयानमालवानपि।
गणान् सर्वान् विनिर्जित्यनीतिकृत प्रहसन्निव॥

महाभारत वन पर्व-255 :20

इस श्लोक में जिस आग्रेयानगण का उल्लेख हुआ है, वह आग्रेयगण ही था। डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त, डॉ. राधा कमल मुकर्जी आदि ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि श्लोक में अग्रोयान गण की जो स्थिति दी गई है, वह वर्तमान अग्रोहा की भौगोलिक स्थिति से मिलती है।

इसके अलावा काठक संहिता, आपस्तंब श्रोत सूत्र तथा पाणिनी व्याकरण में आग्रेयगण का उल्लेख इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि अग्रोहा-जिसका प्राचीन नाम

आग्रेयगण था, महाभारतकाल में उसका अस्तित्व था। इसका प्रमाण वे सिक्के भी हैं, जिन पर अग्रोदके अगाच्च जनपदस लिखा हुआ है।

इससेप हलेके ग्रंथोंम ेंअ ग्रेयगणक ाक ोई विशेषप्र ामाणिकउ ल्लेखन हीं मिलता। इससे स्पष्ट है कि महाराजा अग्रसेन इसी समय में हुए और उन्होंने अग्रोहा राज्य की स्थापना की। इस संबंध में श्री सालिकाराम का यह कथन उचित जान पड़ता है-

महाराजा अग्रसेन जिस काल में हुए, उस काल की राजनीतिक व्यवस्था क्या थी ? यह प्रश्न उनके कालक्रम के बारे में अधिक संगत जान पड़ता है। उरूचरितम तथा महालक्ष्मी व्रतकथा में राजा अग्रसेन के राज्य की जो व्यवस्था दी गई है, वह लोकतंत्रीय प्रणाली पर आधारित राजतंत्रीय व्यवस्था थी। अग्रोहा से प्राप्त सिक्कों में भी जनपद युगीन व्यवस्था के प्रमाण मिलते हैं। महाभारत के भीष्म पर्व के 9वें अध्याय में 250 जनपदों के नाम स्पष्ट रूप से बताये गये हैं, जिससे पता चलता है कि इस प्रकार की व्यवस्था उस युग में थी।

अग्रवैश्यवंशानुकीर्तनम् के अनुसार महाराजा अग्रसेन ने कलियुग संवत् के 108वें वर्ष तक राज्य किया और अंत में वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन अपने पुत्र विभू को राजगद्दी पर अभिषिक्त किया। डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार का मत है कि यह सही प्रतीत होता है कि कलियुग संवत् 108में राजा अग्रसेन अपना राज्य विभू को देकर विरक्त हो गए। उनके राज्य का काल द्वापर युग की अंतिम वेला और कलियुग का प्रारंभ था। स्पष्ट है कि इसी समय में अग्रसेन गद्दी पर बैठे और उन्होंने नये राज्य अग्रोहा की स्थापना की। यही वह काल था जब कुरुवंश की शक्ति क्षीण होने लगी थी और भारत में नये-नये गणराज्यों का निर्माण हो रहा था। छोटे-छोटे राजा किसी विशेष भू-भाग को संगठित कर अपने राज्य स्थापित करने लगे थे। उरूचरितम् की कथा भी इसी काल से संबंधित है। वासुकि नागवंश का अस्तित्व भी इसी काल में विद्यमान था, जिसमें महाराजा अग्रसेन का विवाह हुआ था।

एक अन्य तथ्य भी है। महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास थे। उन्होंने अपने महाकाव्य में 18संख्या को प्रधानता दी। 1+8का योग 9 होता है। नौ सबसे बड़ी और पूर्ण संख्या मानी गई। इसलिए महाभारत की अधिकांश घटनाएं 9 से संबंधित हैं। महाभारत के 18पर्व हैं। महाभारत का युद्ध 18दिन हुआ, दोनों दलों की सैन्य संख्या 18अक्षोहिणी थी, श्री मद्भागवत में भी 18अध्याय हैं, पुराण संख्या भी 18है, श्री मद्भागवत् के श्लोकों की संख्या भी 18हजार हैं। महाराजा अग्रसेन की जीवन घटनाओं से भी इस संख्या का मेल

खाता है, जैसे उनके द्वारा 18यज्ञों का आयोजन, राज्य का 18गणों में विभाजन, 18पुत्र, 18रानियां, 18गोत्र आदि। इससे अनुमान लगता है कि महाराजा अग्रसेन इसी परम्परा के काल से सम्बद्ध रहे होंगे।

इन सब साक्ष्यों के आधार पर महाराजा अग्रसेन का काल द्वापर का अंत और कलियुग का प्रारंभ सिद्ध होता है और उन्होंने कलियुग सम्वत् के 108वें वर्ष तक राज्य किया। विभिन्न मतमतान्तरों के होते हुए भी यह काल वर्तमान अवधारणाओं के अनुसार अब से लगभग 5122 (सन् 1998) वर्ष पूर्व निर्धारित होता है और इससे मानना ही समीचीन होगा। अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन ने भी इसी आधार पर 1976में महाराजा अग्रसेन की 5100वीं जयंती पर डाक टिकट प्रकाशन की मांग की थी और भारत सरकार ने उसे मान्यता देते हुए डाक टिकट प्रकाशित की थी। श्री बालचंद मोदी अपने इतिहास में लिखते हैं कि महाराजा अग्रसेन का जन्म काल चाहे द्वापर के शेष में हो या कलि के प्रथम चरण के आरंभ में अथवा अन्य कोई समय रहा हो। इसमें संदेह नहीं कि वह समय बहुत अच्छा था। हिन्दू जाति का राज्य था। देश में अधर्म न था, धर्म था, विद्या का प्रचार था और चारों वर्ण अपने-अपने कर्म से रहते थे। गुण-कर्म की इज्जत थी। सच्चे की कदर थी और सब लोग सुखी और संतुष्ट थे। ब्राह्मण त्यागी थे, क्षत्रिय रक्षक थे, वैश्य सच्चे थे और शुद्र विनयी थे। ऋषि मुनि विद्वान थे और उन्हीं की आज्ञा से राजा राज्य करते थे। सब वर्णों में परस्पर प्रेम था और धर्म ही लक्ष्य था। धर्म के निमित्त ही सब कार्य किये जाते थे और अत्याचार, दुराचार या व्याभिचार कोई नहीं जानता था। वीरता और बल में विश्वविद्यालयों में पढ़ते थे ओर भारत की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैली हुई थी।

पुरुषों में बहु विवाह प्रचलित हो गया था, पर स्त्रियों का सतीधर्म प्रकाशमान था। पुरुषों में भी धर्म का भाव था, विद्या थी और बल था। भारत के तेजस्वी नेत्रों से कोई देश अपने नेत्र नहीं मिला सकता था। सर्वत्र धर्मराज्य का बोलबाला था।

कतिपय विद्वानों ने भाटों के गीतों के अनुसार उन्हें त्रेतायुग का बताया है। वे इसके समर्थन में निम्न पंक्तियां उद्धृत करते हैं-

अश्विनी शुक्ल प्रतिपक्ष त्रेता पहले चरण।
अग्रवाल उत्पन्न हुए, सुनि भाखे शिव कर्ण॥

इन पंक्तियों के अनुसार परशुराम की अग्रसेन से भेंट हुई। उन्होंने अग्रसेन को क्षत्रिय धर्म का परित्याग करने को कहा किंतु उनके द्वारा इन्कार करने पर उन्होंने अग्रसेन को श्राप दे दिया किंतु इस प्रसंग के पीछे किसी प्रकार का कोई ठोस आधार न होने से इसे

****
मात्र भाटों की किंवदन्ती ही माना जा सकता है।

राज्य भार

अग्रसेन बचपन से किशोरावस्था को प्राप्त हुए और नाना प्रकार से प्रजा का रंजन करने लगे। वे जब सब प्रकार से राज्य का शासन करने योग्य हो गए तो उनके पिता ने प्रसन्न होकर सन्यास ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। उस समय वर्णाश्रम धर्म का पालन होता था। अग्रसेन की अवस्था उस समय 35 वर्ष हो चुकी थी। वे सब प्रकार से सुयोग्य थे, इसलिए प्रजा ने भी महाराजा की इच्छा का स्वागत किया। महाराजा ने शुभ मुहूर्त में महाराजा अग्रसेन का राजतिलक किया और स्वयं वन में तपस्या करने चले गए और कुछ काल बाद वहीं उनका शरीर शांत हो गया।

महाराजा अग्रसेन ने राजपाट पाकर कई बार विजय यात्राएं कीं और अपने राज्य का विस्तार किया। इनके अधीन चम्पावती आदि अनेक माण्डलिक राज्य थे। उनका प्रताप दिन दुगुना और रात चौगुणा बढ़ रहा था, जिसे देखकर प्रजा बहुत प्रसन्न थी।

अग्रोहा राज्य स्थापना की कथा

अपने पिता की मुक्ति हेतु महाराजा अग्रेसन ने गया जाकर पिण्डदान किया। कहते हैं, राजा वल्लभ ने उनके द्वारा दिया गया पिण्डदान नहीं लिया। अग्रसेन इससे बहुत दुखी हुए। धर्मप्रिय होने के कारण ब्राह्मणों एवं अन्य मंत्रिगण से उन्होंने परामर्श किया तो मालूम हुआ कि–

एक बार राजा वल्लभ की सवारी निकल रही थी। उसी समय एक सुंदर ब्राह्मण कन्या जल में स्नान कर रही थी। राजा को उसका सौन्दर्य बहुत पवित्र लगा। वह सोचने लगे कि मेरी कन्या भी इसी प्रकार की होती तो कितना अच्छा होता ? राजा को वहां रुका देख, ब्राह्मण कन्या ने अकारण ही उन पर शंका कर श्राप दे दिया कि तुमने एक परायी स्त्री पर कुदृष्टि डाली है, अत: तुम्हारी मुक्ति नहीं होगी। महाराजा अग्रसेन बड़े चिंतित हुए। पंडितों ने बताया कि यदि वे लोहागढ़ जाकर पिण्डदान करें तो महाराजा को मुक्ति हो सकती है। लोहागढ़ पंजाब का ही एक स्थान है। महाराजा ने ब्राह्मणों के कथानुसार वहीं जाकर पिंडदान किया। उनके पिंडदान से महाराजा वल्लभ को मुक्ति मिली। महाराजा अग्रसेन बड़े ही प्रसन्न हुए।

पिण्डदान कर राजधानी लौटते समय जब महाराजा अग्रसेन एक जंगल से होकर निकल रहे थे तो एक अद्‌भुत घटना घटी। एक सिंहनी उसी समय प्रसव कर रही थी, अग्रसेन जी के लाव–लश्कर से उसके प्रसव में बाधा पड़ी। सिंह के क्रुद्ध बच्चे ने जन्म

****
लेते ही राजा के हाथी पर प्रहार किया और अकल्पनातीत शौर्य को प्रदर्शित किया। यह देखकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। राजा को आश्चर्य में पड़ा देख राजा के साथ चल रहे धर्माचार्यों ने कहा कि वास्तव में यह स्थान वीर–प्रसूता है। आप अपने राज्य की राजधानी भी यहीं बनायें। महाराजा अग्रसेन उस भूमि के महान शौर्य, पराक्रम, प्राकृतिक वैभव एवं धर्माचार्यों के परामर्श से बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने वहीं अपनी राजधानी बनाने कानिर्णय लिया। उन्होंने अपनी पुरानी राजधानी का प्रबंध अपने छोटे भाई को सौंप दिया और स्वयं अग्रोहा में नई राजधानी बनाकर राज्य करने लगे।

महाराजा अग्रसेन का अग्रोहा में राजधानी बनाने का यह कार्य सर्वथा बुद्धिमतापूर्ण एवं तत्कालीन परिस्थितियों में अनुकूल था। पंजाब की शस्य श्यामला भूमि एवं वहां की समृद्धि सदैव से विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र रही है और इसी समृद्धि और वैभव से आकर्षित होकर उस पर समय–समय पर आक्रमण होते रहे हैं। अत: इस प्रकार से आक्रमणों के मध्य प्रजा के लिये सुख–शांति पूर्ण राज्य अथवा उनके चहुंमुखी विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। अग्रोहा को इन आक्रमणों से दूर रखने का एकमात्र उपाय यही था– उसे जलमार्ग से दूर राज्य की भीतरी सीमाओं से स्थापित करना ताकि आक्रमणकारी वहां पहुंचने का साहस न कर सके। यह भी आवश्यक था कि वहां पानी के स्रोत विद्यमान हों, ताकि प्रजा को पीने के लिये पानी और खेतीबाड़ी के लिये जल उपलब्ध हो सके।

महाराजा अग्रसेन ने इसी हेतु बीहड़ जंगल को अपनी राजधानी के लिये चुना क्योंकि जंगल में जमीन के नीचे पानी के स्रोत पर्याप्त मात्रा में रहते हैं। साथ ही उन्होंने वहां विशाल तालाब बनवाया। संभवत: जल अथवा तालाब के इसी महत्व को देखते हुए उन्होंने अग्रोहा का नाम अग्रोदक रखा, जिसका अर्थ है– अग्र का तालाब। कालान्तर में यही नाम अग्रोहा रूप में परिवर्तित हो गया।

महाराजा अग्रसेन द्वारा 18यज्ञों का आयोजन

इस प्रकार महाराजा अग्रसेन ने सुखपूर्वक राज्य किया और अपने राज्य का विस्तार किया। उनका राज्य सब प्रकार की सुख समृद्धि से परिपूर्ण था, किसी प्रकार का अभाव जन को न था। धर्म में उनकी अगाध श्रद्धा थी। धर्म उनके लिए प्रजा में नैतिक अभ्युदय का स्रोत था। उस समय बड़े–बड़े राजा धर्म सिद्धि के लिये विशाल अश्वमेध यज्ञों का आयोजन करते थे। ये यज्ञ उनकी प्रतिष्ठा के मापदण्ड तो थे ही, राष्ट्र की भावनात्मक एकता एवं जन–जन से जुड़ने के माध्यम भी थे। सम्पूर्ण राज्य उनमें भाग

****
लेता था और पवित्र द्रव्यों की आहूति द्वारा अपने तथा मानवमात्र के कल्याण की कामना करता था। इससे राजा एवं प्रजा दोनों की चित्तवृत्तियां शुद्ध होतीं, जिससे समाज में सदाचार की वृद्धि होती थी। लोग मानसिक व्यभिचार एवं अनाचार से बचते, उनकी भावनाएं पवित्र होतीं और सम्पूर्ण राष्ट्र अंधकार से प्रकाश, अनय से नय की ओर बढ़ता।

इस प्रकार यज्ञों के माध्यम से जहां उन्होंने अपने राज्य की प्रजा को सदाचार और नैतिकता की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया, वहां गोत्रों के प्रवर्तन द्वारा अग्रोहा राज्य की जनता को एकता एवं संगठन के सूत्र में आबद्ध किया। यह उनकी अद्‌भुत संगठन क्षमता का ही परिणाम था कि शताब्दियां व्यतीत हो जाने पर आज भी अग्रवाल जाति संगठित रूप से विद्यमान है और वह अपने श्रेष्ठ चारित्रिक गुणों द्वारा राष्ट्र एवं मानव मात्र के कल्याण तथा श्रीवृद्धि में संलग्न है।

यज्ञ के अधिष्ठाता स्वयं महाराजा बने। ब्रह्मा का आसन गर्ग मुनि ने ग्रहण किया। दूर-दूर स्थानों एवं राज्यां को यज्ञ का निमंत्रण भेजा गया। यज्ञ में बड़े-बड़े मुनि, विद्वान और मनीषी सम्मिलित हुए। अतिथि सत्कार का कार्य शूरसेन ने संभाला।

कहते हैं, 17 यज्ञ पूर्ण विधि-विधानपूर्वक निर्विघ्न संपन्न हो गए किंतु 18वें यज्ञ के पूर्व महाराजा के मन में की जाने वाली पशु बलि को लेकर द्वंद्व पैदा हो गया। उन्होंने सोचा कि यज्ञ जैसे पवित्र कार्य में पशु बलि जैसा अपवित्र कार्य क्यों ? वैश्यों का कर्म तो पशुपालन और उनकी रक्षा है, फिर उनकी बलि क्यों दे ?

इन प्रश्नों ने उनके मानस को मथ कर रख दिया। अंत में सत्य, न्याय और अहिंसा की विजय हुई। महाराजा अग्रसेन ने यज्ञ में पशु बलि न करने का निश्चय किया।

यज्ञ के पुरोहितों एवं विशिष्ट जनों ने महाराजा को समझाया कि अब केवल एक यज्ञ शेष बचा है, उसे पूरा कर लिया जाये। इसके बाद भविष्य में पशु-बलि का निषेध कर दिया जाये। किन्तु महाराजा टस से मस नहीं हुए। उन्होंने उपस्थित सभासदों को समझाते हुए कहा कि मनुष्य जितना पाप कर्म से बच सके, उतना ही श्रेष्ठ पशु हिंसा दुष्कर्म ही नहीं, दुष्पाप भी हैं। यदि हम किसी को जीवनदान नहीं दे सकते, तो उनके प्राण लेने का हमें कोई हक नहीं है। भगवान ने वैश्य जाति को पशु-रक्षा एवं पालन के लिये बनाया है, न कि उनके प्राण लेने के लिये। यज्ञ श्रेष्ठ कर्म है, उसमें पशु-बलि अत्यंत अपवित्र है। हाय। मैंने जो अब तक दुष्कर्म किया, उसका पता नहीं, कितना प्रतिफल अगले जन्म में भुगतना पड़ेगा ? मैं भी कैसा पापी हूं, जो मेरे मस्तिष्क में यह विचार पहले न आया।

सबने देखा महाराजा अत्यन्त ही व्यथित मुद्रा में थे। महाराजा का निश्चय अटल

****
था। सबने कहा- यज्ञ का समय टलता जा रहा है। महाराजा जल्दी कीजिए, जैसा आप उचित समझें, कीजिए।

महाराजा अग्रसेन के इन विचारों से महाराजा शूरसेन और सभी व्यक्ति बड़े प्रभावित हुए। सबके मन में हिंसा के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई। महाराजा अग्रसेन ने यज्ञ स्थल से घोषणा करते हुए कहा कि-

अहं स्वभ्रातृन् पुत्रांश्च तथां कन्याः कुटुम्बिनः
इदमेवोपदिशामि न कश्चिद्धधमाचरेत्॥

यज्ञ में पशु हिंसा से मुझे घृणा हो गई है। अतः मैं अब अपने समस्त बंधु-बांधवों, पुत्रों, कन्याओं, कुटुम्बियों तथा वैश्य कुलों को यही उपदेश देता हूं कि वे कोई हिंसा न करें।

महाराजा अग्रसेन का यह हृदय परिवर्तन उनके अहिंसाप्रिय, स्नेहिल स्वभाव के अनुकूल ही था। उन्होंने अपने सिद्धान्तों की बलि देते हुए किसी ऐसे अधार्मिक कार्य को करने से सर्वदा मना कर दिया, जिससे मनुष्यों को तो क्या, मूकजीवों को भी कष्ट की अनुभूति होती हो। यह हिंसा पर अहिंसा, क्रूरता पर करूणा एवं स्नेह तथा पाशविकता पर मानवता की श्रेष्ठतम् विजय थी।

महाराजा अग्रसेन की इस विचारधारा का अग्रवाल एवं वैश्य जाति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। यह उनकी विचारधारा का ही प्रभाव था कि आज भी अग्रवाल जाति निरामिष, शाकाहारी, अहिंसक एवं धर्मपरायण जाति के रूप में प्रतिष्ठत है। आज जबकि विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्र और विदेशों में भी अहिंसा की ओर प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, उससे महाराजा अग्रसेन की दूरदर्शिता का परिचय मिलता है।

- डॉ. चम्पालाल गुप्त
श्रीगंगानगर

भारतरत्न डॉ. भगवानदास

डाक-तार विभाग, भारत सरकार द्वारा दिनांक 12 जनवरी 1969 को डॉ. भगवानदास पर डाक टिकट प्रकाशित किया गया।
रत में उत्पन होने वाले ऋषियों की विचारधाराएं सारे संसार का मार्ग दर्शन करती रही है। उसी कोटि के आधुनिक युग के महान मनीषी डॉ. भगवानदास जी के नाम से सभी परिचित हैं, जिन्हें भारत सरकार ने 'भारत-रत्न' की सर्वोच्च उपाधि से सम्मानित कर उनकी महानता को स्वीकार किया था।

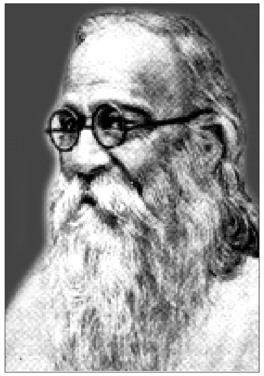

भारत-रत्न डॉ. भगवान दास जी, बाबू माधव दास जी व श्रीमती किशोरी देवी के द्वितीय पुत्ररत्न थे। उनका जन्म काशी में माघ कृष्ण 15 मौनी अमावस्या सं. 1925 वि. तदनुसार तारिख 12 जनवरी सन् 1869 को प्रातः 9 बजकर 5 मिनट पर हुआ। इनका प्रथम विवाह पटना के सिंघल गोत्रीय श्री फकीरचन्द नामक प्रसिद्ध नागरिक के यहां हुआ। किन्तु विवाह के दो-तीन माह पश्चात् ही पत्नी की मृत्यु हो गई। द्वितीय विवाह काशी के श्री विश्वेश्वर प्रसाद अध्यापक की पुत्री व जयपुर स्टेट के एकाउण्टेण्ट जनरल राय बहादुर श्री वैष्णव दास जी की बड़ी बहन श्रीमती चमेली देवी के साथ हुआ। 90 वर्ष की अवस्था पूरी करने के बाद सं. 2016 में (18 सितम्बर सन् 1958) इनका स्वर्गवास हो गया।

अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष से ही ये ''होनहार विरवान के होत चीकने पात'' वाली कहावत को चरितार्थ करने लगे थे। इनका अक्षरारम्भ तृतीय वर्ष की अवस्था में ही इनके पिताजी ने कराया था। पांचवे-छठे वर्ष में हिन्दी अच्छी रीति से पढ़ने लगे थे। इसी अवस्था में अपनी दादी पार्वती देवी को प्रतिदिन प्रातःकाल गीता का अध्याय मूल श्लोक और उसकी हिन्दी भी सुनाया करते थे। बारह वर्ष की अल्प आयु में ही इन्होंने क्वींस कॉलेज में पढ़ते हुए इन्ट्रेंस की परीक्षा पास की। अध्ययन का क्रम पूर्ववत् चलता रहा और सन् 1884 में इन्होंने अंग्रेजी, साइकोलॉजी, फिलॉसफी और संस्कृत लेकर बी.ए. तथा 1885 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. (दर्शन शास्त्र), आनर्स के साथ परीक्षा उत्तीर्ण हुए। तब इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना नहीं हुई थी और एम.ए. भी दो वर्ष का नही, केवल एक वर्ष का कोर्स होता था। स्कूल और कॉलेज की शिक्षा के अतिरिक्त घर पर संस्कृत, फारसी, उर्दू तथा अन्य विविध विषयों की शिक्षा भी आप बराबर प्राप्त करते रहे। आपने सन् 1892 ई. में ''साइंस ऑफ पीस तथा साइंस ऑफ इमोशंस'' नामक गूढ़ ग्रन्थों की रचना की। सन् 1929 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ने डी.लिट की उपाधि (हानरस काजा) प्रदान कर सम्मानित किया। सन् 1937 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने भी अपनी ओर से इन्हें डी.लिट की उपाधि देकर विभूषित किया।

यों तो सरकारी नौकरी करने का प्रारम्भ से ही इनका विचार नहीं था, किन्तु पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए इन्हें उस क्षेत्र में काम करना पड़ा। उस समय अंग्रेजी नौकरी बड़े सम्मान का विषय समझी जाती थी और हर रईस की यह हार्दिक इच्छा रहती थी कि उनकी संतान पढ़-लिखकर सरकारी अफसर बने। श्री भगवान दास जी सन् 1890 से 1898 ई. तक उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में मजिस्ट्रेट के रूप में अंग्रेजी सरकार की नौकरी करते रहे। सन् 1897 ई. में इनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया और कुछ दिन बाद नौकरी से त्यागपत्र देकर ये अपने स्वतंत्र अध्ययन और सामाजिक कार्यों में लग गए। इनके सामाजिक कार्यों का आरम्भ सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना (सन् 1898) से होता है। ऐनीबेसेन्ट के साथ इन्होंने उक्त संस्था के लिए जो कार्य किया, वह इतिहास में अपना चिर-स्मरणीय महत्व रखता है। इन लोगों के कर्मण्य सहयोग और दृढ़ निष्ठा का ही परिणाम था कि सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज आर्थिक दृष्टि से सदैव आत्मनिर्भर रहा। उसने अंग्रेजी सरकार से कभी एक पैसे की भी सहायता नहीं ली। सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज के ये सन् 1898 से सन् 1914 तक संस्थापक सदस्य तथा ऑनरेरी सेक्रेटरी रहे।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की संस्थापना में इनका प्रमुख सहयोग था और ये उसके संस्थापक सदस्यों में से एक थे। दानवीर श्री शिवप्रसाद जी के आर्थिक अनुदान से सन् 1921 में महात्मा गांधी ने अंग्रेजी पठन-पाठन व्यवस्था के विरूद्ध नई राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिए काशी विद्यापीठ की स्थापना की और श्री भगवान दास जी उसके कुलपति बनाए गए। इनके कार्यकाल में संस्था ने सरकारी विरोध चक्रों का साहसपूर्वक सामना करते हुए अपने विकास की कई मंजिलें पूरी की। महात्मा गान्धी जी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें सन् 1921 ई. में एक वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। किन्तु थोड़े ही दिनों के बाद इन्हें कारावास से मुक्त कर दिया गया।

सन् 1919 में सहारनपुर में उत्तर प्रदेशीय सामाजिक सम्मेलन के और 1920 में मुरादाबाद में राजनैतिक सम्मेलन के सभापति थे। सन् 1921 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे। सन् 1923 से 1925 तक बनारस नगर पालिका के चेयरमैन रहे। इसके पश्चात् सन् 1926 से 1936 ई. तक चुनार में गंगा तट पर एकान्तवास करते हुए प्राचीन ऋषियों का सा जीवन व्यतीत किया। सन् 1931 में जब काशी और कानपुर में भीषण हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था, उसकी जांच के लिए कांग्रेस की तरफ से एक समिति संगठित हुई थी। आप उसके अध्यक्ष थे। आपने बड़े परिश्रम पूर्वक समस्या की जांच की और छः माह पश्चात अपनी वृहत रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें न केवल दंगों के कारणों पर प्रकाश डाला गया था, अपितु उनके सम्यक् समाधान के लिए भी सुझाव रखे गए थे। सन् 1935 में ये केन्द्रीय विधान सभा के निर्विरोध सदस्य चुने गए और सन् 1938 तक रहे। जब देश स्वतन्त्र हुआ, तो भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने (सन् 1955) में इन्हें 'भारत-रत्न' की उपाधि प्रदान कर विभूषित किया। इनके दो पुत्र श्री श्रीप्रकाश जी, राज्यपाल हुए तथा श्री चन्द्रभान जी (उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष) तथा दो कन्याएं श्रीमती शान्ता देवी और श्रीमती सुशीला देवी

थी। श्रीमती शान्ता देवी इनकी सबसे ज्येष्ठ सन्तान थी और इनका विवाह श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के भतीजे श्री ब्रजचन्द्र जी के साथ हुआ था। श्रीमती सुशीला देवी इनकी सबसे कनिष्ठ सन्तान थी। इनका विवाह सुप्रसिद्ध पत्थर खानदान के लाला रामानुज जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री महावीर प्रसाद जी से हुआ था। डॉ. भगवान दास जी द्वारा लिखित अनेक ग्रन्थों में से मुख्य-ग्रन्थ निम्नोक्त हैं-

1. सायंस ऑफ सोशॅल ऑर्गनाइजेशन (लॉज आफ मनु)
2. मानव धर्म सार
3. प्रणवाद
4. सायंस आफ दि सेक्रेट वर्ड
5. सायंस आफ इमोशंस
6. सायंस आफ पीस
7. एसेन्शल युनिटी ऑफ रिलीजन्स
8. कृष्णः ऐज आई सी हिम
9. समन्वय
10. पुरूषार्थ
11. विविधार्थ
12. बुद्धिवाद बनाम शास्त्रवाद
13. सायंस आफ सेल्फ

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत में समय-समय पर आपने अपने विविध विषयों पर जो पुस्तिकाएं, लेख, अभिभाषण आदि लिखे हैं, वे भी दृष्टव्य तथा मननीय हैं।

डाक्टर साहब राष्ट्रीयता के प्रखर प्रचारक थे, परन्तु हिन्दुत्व की उच्चतम भावना भी उनमें थी। सन् 1948 में महात्मा गांधी की मृत्यु के पश्चात् जब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर भारत सरकार ने प्रतिबंध लगाया तो उन्होंने इस पर भारत सरकार की कटु आलोचना की। जब कांग्रेसी मत्रिमंडल की देहली में हत्या करने का षडयंत्र रचा गया तो किस प्रकार राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के एक स्वयं सेवक ने उसे विफल बनाया, उसे डाक्टर साहब ने बड़े जोरों से प्रचार द्वारा जनता व सरकार को बताया। अग्रवाल वैश्य जाति के उज्जवल भविष्य की वे सदा कामना करते रहे। उनके यशस्वी पुत्र बाबू श्रीप्रकाश राज्यपाल, उच्चायुक्त जैसे अनेक उच्च पदों पर कार्य करते रहे। वंशानुगत देशभक्ति का यह परमोत्कृष्ट उदाहरण है। देश को ऐसे देशभक्त परिवारों की महती आवश्यकता है।

-रामलाल गुप्ता, एडवोकेट, श्रीगंगानगर।

शेरे पंजाब लाला लाजपतराय

- श्री देवप्रकाश

19वीं शताब्दी के अन्त में 28जनवरी 1865 को फिरोजपुर जिले के ढोढिका ग्राम में भारतीय स्वतंत्रता के अमर सेनानी लाला लाजपराय का जन्म हुआ। उनके पिता लाला राधाकिशन एक स्कूल में अध्यापक थे। गांव से स्कूल की शिक्षा पूरी कर 1880 में अम्बाला से हाई स्कूल पासकर गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर से एफ.ए. व वकालत पास कर हिसार में कवालत के लिये आ गए।

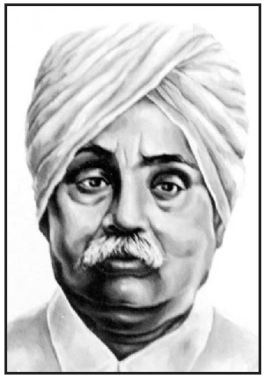

लाहौर के शिक्षाकाल में वे महातम हंसराज जी व पं. गुरूदत्त एम.ए. के सम्पर्क में आकर उच्चकोटि के धाम्रिक सुधारक विचारों से प्रभावित हो चुके थे। अत: हिसार की वकालत की कमाई का हजारों रुपया वे सार्वजनिक कामों पर ही खर्च करते रहे। लाला जी आर्य समाज को अपनी माता कहा करते थे। स्वामी दयानंद जी की मृत्यु पर लाहौर में एक शोकसभा आयोजित की गई जिसमें दिया गया लाला जी का भाषण एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

हिसार लालाजी की सेवा का संकुचित क्षेत्र होने से लाहौर के साथियों के आग्रह पर वे लाहौर में आकर वकालत करने लगे। हंस जिस जगह पर जाते हैं, वहीं सरोवर बन जाता है। लाला जी के कारण लाहौर भारतीय जागरण का महान क्षेत्र बन गया। डीएवी कॉलेज जैसे विशला संगठन की आधारशिला लालाजी के हाथ से पड़ी जिसे बाद में महात्मा हंसराज जी ने अपनाजीवन देकर सफल बनाया। देश में पड़ने वाले आकलों व भूकम्पों में दिन-रता एक करके लालाजी ने जी-जान से सेवाएं कीं। 1902 तक लालाजी शिक्षा के क्षेत्र में इतने बड़े नेता बन चुके थे कि लार्ड कर्जन ने अपनी शिक्षा संबंधी कमेटी में आपको साक्षी के लिए बुलाया।

लालाजी जहां स्वयं अपनी कमाई के हजारों रुपये दान में देते रहे वहीं झोली लेकर लाखों रुपये जनता से इकट्ठे कर अपनी बहु विध समाज सेवा के महान कार्यों का संचालन करते रहे। लालाजी के भाषणों में इतना जादू था कि महिलाएं अपने आभूषण उतारकर लालाजी की झोली में डाल देती थीं।

हिन्दू-जाति की सेवा

देश में भीषण अकाल पड़ते व अंग्रेजी सरकार मौन-सी हो रहती। हां ईसाई मिशनरियों की सहायता करतीं। ईसाई प्रचारक देश की जनता की इस विवशता का लाभ उठाकर धड़ाधड़ गरीब प्रजा को ईसाई बनाते। लालाजी हिन्दू-जाति की इस क्षति को सहन न कर सके

और उन्होंने तन-मन-धन से ईसाइयों के कुचक्रों का विरोध किया। लालाजी स्वयंसेवक बनकर अकाल-पीड़ितों की सेवा करते थे।

हिन्दू समाज के पिछड़े वर्ग हरिजनों के उद्धार के लिये लालाजी ने 1912 में गुरूकुल कांगड़ी के उत्सव पर एक सम्मेलन बुलाया। स्व. श्रद्धानंद जी, महामना मालवीय जी के साथ मिलकर हजारों रुपये खर्च कर पिछड़े लोगों की शिक्षा व उन्नति के लिये प्रबंध किया तथा सवर्ण लोगों में उनके लिये सहानुभूति उत्पन्न की। गांधी जी का हरिजन आंदोलन लालाजी के इस आंदोलन का ही एक रूप था।

कांग्रेस में प्रवेश

1825 में लार्ड डफरिन के परामर्श पर मि. ह्यूम नामक एक अंग्रेज ने कांग्रेस की स्थापना की। इसका चौथा अधिवेशन 1888में इलाहाबाद में हुआ। लालाजी पहली बार इसके अधिवेशन में सम्मलित हुए। 23 वर्ष की आयु से ही लालाजी कांग्रेस के प्रभावशाली कार्यकर्ता बन गए। कांग्रेस के मंच पर लालाजी को भाषण का अवसर दिया गया। इसमें आपने कौंसिल सुधार संबंधी प्रस्ताव बड़े ही उत्तम ढंग से पेश किया।

1812 में पुन: इलाहाबाद में कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर एक पत्रिका प्रकाशित की जिसमें मुसलमानों के बहुत प्रसिद्ध नेता पर सैयद अहमद के कांग्रेस विरोधी विचारों का मुंहतोड़ उत्तर था। इससे लालाजी की प्रतिष्ठा को चार चांद लग गए और लालाजी की योग्यता से प्रभावित होकर अधिवेशन लाहौर में ही करने का निश्चय किया गया।

पंजाब में कांग्रेस का यह पहला अधिवेशन था जो पूर्ण सफल रहा। परंतु अंग्रेजी सरकार की लालाजी पर टेढ़ी नजर हो गई। इसका यह था कि 1817 में लाहौर में महारानी विक्टोरिया की मूर्ति स्थापित करने का लालाजी ने यह कहकर विरोध किया कि देश घोर अकाल के चंगुल में फंसा भूखों मर रहा है। उधर जनता के धन का दुरुपयोग किया जा रहा है। इस घटना के बाद लालाजी की राष्ट्रीय भावना तीव्रतर होती चली गई।

उन दिनों कांग्रेस का संचालन नरम दल के नेता गोखले व दादाभाई नौरोजी करते थे परंतु लोकामन्य बाल गंगाधर तिलक व लालाजी की उनसे नहीं पटती थी। महाराष्ट्र में लोकामन्य का प्रभाव बढ़ रहा था। लालाजी व तिलक जी के विचारों में बहुत अनुकूलता थी। दोनों ने कांग्रेस को प्रभावशाली व उग्र बनाने की पूरी चेष्टा की। उन्हें बहुत विरोध सहना पड़ा परंतु अन्त में विजय उन्हीं की हुई।

कांग्रेस के सूरत व नागपुर अधिवेशनों में यह विरोध उग्ररूप से प्रकट हुआ। नरम दल से रास-बिहारी घोष का नाम प्रस्तुत किया जबकि बाल गंगाधर तिलक ने लाला लाजपतराय जी का नाम प्रस्तावित किया। लालाजी माण्डले की जेल से छूटकर आए थे और सारे देश की जनता का ध्यान लालाजी की ओर था।

1905 में बंगभंग के आंदोलन में प्रबल जनजागरण हुआ। सरकार दमनच्र चला रही

थी। हजारों देशवासी जेल के सीखचों में बंद किए गए थे। लालाजी ने पंजाब में बड़े राजनैतिक युद्ध कौशल से जनता को जगाया, बहुत गिरफ्तारियां हुईं। सरकार लालाजी को सीधे तो गिरफ्तार न कर सकी परंतु उसने कूटनीति का सहारा लिया और सन् 1818में बंगला रेग्यूलेशन एक्ट का सहारा लेकर लालाजी को पकड़कर भारत से निर्वासित करने का कठोर दण्ड दिया।

लालाजी की गिरफ्तारी से देश में अंग्रेजों के विरुद्ध घोर घृणा की भावना जाग उठी। इंग्लैंड में भी भारत मंत्री को गिरफ्तारी के कारण बताना कठिन हो गया, विवश अंग्रेजी सरकार को लालाजी को रिहा करना पड़ा।

माण्डले से लौटकर तो लालाजी वकालत को छोड़कर दिन-रात ही देश सेवा के काम में जुट गए। विदेशों में जा-जाकर भारतीय स्वतंत्रता के पक्ष में वाणी व लेखनी से जनता को जगाने लग पड़े। लालाजी ने अंग्रेजी में उच्चकोटि की पुस्तकें लिखीं, जिनका संसार की प्राय: सभी भाषाओं में अनुवाद हुआ।

लालाजी ने इंग्लैंड में रहकर इण्डियन होम रूल लीग की स्थापना की जिसका समर्थन भारत वर्ष में लोकामन्य बाल गंगाधर तिलक ने किया ओर सुप्रसिद्ध विदेशी विदुषी महिला श्रीमती ऐनीबेसेंट की सहातया से देश भर में इस लीग की स्थापना कर दी।

1914-18में प्रथम महायुद्ध के समय लालाजी विदेश में थे। सरकार ने उनके भारत लौटने पर पाबंदी लगा दी। महायुद्ध के बाद मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों का भारत ने विरोध किया। चिढ़कर अंग्रेजी सरकार ने रोलट एक्ट जैसा काला कानून भारतवासियों के लिये बनाया। सारे देश में इसके विरोध में सभाएं हुईं। युद्ध के पश्चात लालाजी देश लौट आए। सारे देश की जनता ने लालाजी को राष्ट्र के सर्वोच्च नेता के रूप में स्वीकार किया था। 1920 में महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में कलकत्ता कांग्रेस में असहयोग-आंदोलन का प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

लालाजी का देश में बहुत सम्मान था, लालाजी ने सारे देश को अपने ओजस्वी भाषणों से जगाया। सरकार ने इससे प्रभावित होकर लालाजी को सितम्बर 1929 को बंदी बना दिया। जेल में लालाजी को जिस प्रकार रखा गया उससे लालाजी बीमार हो गये। सरकार ने उन्हें छोड़ दिया परंतु स्वास्थ्य सुधारने में लालाजी को काफी समय लगा। वे सोलन में स्वास्थ्य सुधार के लिये रहे।

लाहौर लौटकर अपनी राष्ट्रीय सेवा को स्थाई रूप देने के लिये तिलक विद्यालय व लोकसेवक संघ की स्थापना की। स्व. लाल बहादुर शास्त्री लालाजी की इन्हीं संस्थाओं की अमर देन थे। राष्ट्रीय आंदोलन में काम करने वाले कार्यकर्ता प्राय: हिन्दू ही थे। मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन से दूर ही रहते थे। अंग्रेजों ने मुसलमानों की पीठ पर हाथ रखा हुआ था। हिन्दुओं की राष्ट्रीय भावना में चिढ़कर मुसलमानों को सहारा देकर देश में कुचक्र चलाया। मुसलमानों के घोर साम्प्रदायिक नेताओं के प्रयत्नों से हजारों हिन्दू मुसलमान बनाए जाने लगे। इधर ईसाई सरकार की सीधी सरपरस्ती में लाख हिन्दुओं को ईसाई बना ही रहे थे। लालाजी से अंग्रेजों की यह

कुटिल चाल छुपी न रह सकी। वे समझ गए कि प्रबल राष्ट्रवादी लहर को कुचलने के लिये सरकार का यह जवाबी हमला है। अत: हिन्दू जाति को सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बनाने का लालाजी ने बीड़ा उठाया। महामना मालवीय जी व स्व. श्रद्धानंद जी उनके परम सहयोगी के रूप में थे। देशभर का ध्यान उन्होंने इस महानलक्ष्य पर केन्द्रित कर दिया हिन्दुओं में जनजीवन का संचार हो गया।

अंग्रेजी सरकार ने सर साइमन की अध्यक्षता में फिर एक कमीशन भारत भेजा। भारत के राष्ट्रीय नेताओं को इस कमीशन से पूण्र मतभेद था ही। क्योंकि राष्ट्रीय नेताओं ने यह मांग की थी कि कमीशन में भारतीय जनता को भी प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। परंतु अंग्रेज सरकार ने इस मांग को ठुकरा दिया। इसलिए सारे देश में विक्षोभ की लहर फैल गई। लाहौर में 30 अक्टूबर 1922 को कमीशन पहुंचने वाला था। कांग्रेस की आज्ञा पर हजारों लोग काले झण्डे लेकर इस कमीशन का स्वागत करने पहुंचे। सरकार ने गौरे फौजियों व घुड़सवारों को जनता पर निर्मम अत्याचार करने के लिये नियुक्त किया। यह देखकर स्वयं लालाजी ने जनता के इस जुलूस का नेतृत्व किया। लालाजी स्वयं जुलूस के आगे चल रहे थे। पुलिस ने निहत्थे नागरिकों पर लाठियां बरसाईं। लालाजी का वृद्ध शरीर भी इन्हीं लाठियों से जख्मी हो गया। उनकी छाती पर गहरा जख्म बन गया जिससे सूजन भी आ गई। इसके कारण 19 नवम्बर 1928को प्रात: 7.30 बजे भारत माता का यह लाडला सपूत स्वतंत्रता देवी के चरणों में आत्माहूति प्रदान कर भारतीय शहीदों की टोली का सरदार बनकर चमक उठा।

देशवासियों ने प्राय: सभी बड़े नगरों में लालाजी के स्मारक बनाए। बम्बई में भी लाला जी की स्मृति स्वरूप महालक्ष्मी क्षेत्र में एक विशाल शिक्षा-केन्द्र भवन उनके मिशन की पूर्ति के लिये बनाया गया है, जिसमें मैनेजमेंट का विशेष अध्ययन कराया जाता है, जिसे बम्बई वासियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है।

डॉ. राममनोहर लोहिया

एक बार लोहिया जी काशी की गंगा में बजड़े पर साथियों के साथ घाट भ्रमण कर रहे थे और बजड़ा मणिकर्णिका घाट के सामने रूका तो साथियों ने बताया कि इस घाट पर चौबीसों घंटे मुर्दे जलते रहते हैं और यह भी बताया गया कि कोई मुर्दा 7 मन का है, कोई 9 मन का एवं कोई 11 मन का। लोहिया जी को मुर्दों के अलग-अलग वजन वाली बात समझ में नहीं आई तो उन्होंने पूछा कि यह 7 मन, 9 मन एवं 11 मन क्या है। उन्हें बताया गया कि गरीब मुर्दे 7 मन लकड़ी में जलाये जाते हैं। सामान्य लोग 9 मन में एवं सम्पन्न लोग 11 मन लकड़ी में जलाये जाते हैं। उस समय लोहिया जी के मुंह से केवल एक बात निकली कि ''श्मशान में भी असमानता।'' यह बात उस समाजवादी व्यक्ति के समतावादी चरित्र को उजागर करती है।

नेहरू जी देश एवं दुनिया के सर्वमान्य नेता थे, लेकिन लोहिया जी पंडित नेहरू का खुलकर एवं तर्कपूर्ण विरोध करते थे। लोगों ने लोहिया जी से पूछा कि आप नेहरू जी का इतना विरोध क्यों करते हैं?लोहिया जी ने कहा कि मरना है तो हिमालय से टकरा कर मरो, छोटी-मोटी पहाड़ियों से टकरा कर क्यों मरते हो?'' उनकी इस उक्ति में विरोध के पीछे उनका आत्म-विश्वास बोल रहा था। भले ही जिसका विरोध कर रहे थे वे कितने ही बड़े एवं महान हों।

लोहिया जी चैत्रकृष्ण तृतीया 23 मार्च, 1910 को अयोध्या की पवित्र भूमि अकबरपुर में जन्मे। धन्य है अवध की भूमि जहां कभी भगवान राम अवतरित हुए थे। इनकी मां का नाम चंदा तथा पिता श्री हीरालाल थे। इनके दादा शिवनारायण जी मिर्जापुर से आकर यहां बसे थे। मिर्जापुर में लोहे का व्यापार होने के कारण वे लोहिया कहे जाते थे। माता चन्दा मिथिला के चनपरिया गांव के झुनझुनवाला परिवार की लाडली कन्या थी। मिथिला की चन्दा का अयोध्या में आना मात्र एक संयोग ही था। इसी चंदा की कोख से राममनोहर ने जन्म लिया।

लोहिया जी जब मात्र ढ़ाई वर्ष के थे तो मां का साया उठ गया। इनके

****

लालन-पालन का सारा भार दादी पर आ गया। पत्नी के अभाव में पिता हीरालाल जी राष्ट्रसेवा की ओर प्रवृत्त हो गए। पांच वर्ष की अवस्था में स्थानीय टण्डन पाठशाला में भर्ती हुए। पांचवीं कक्षा में विशेश्वरराम हाई स्कूल में दाखिल हुए। वह पढ़ने में जितने तेज थे, नटखट पन तथा शरारत में भी उतने ही तेज। अन्याय का प्रतिकार करने का अदम्य साहस। पिता लेकर बम्बई गए तथा वहीं बस गए। उन दिनों गांधी जी की पुकार पर सारा देश उमड़ पड़ा था। बालक राम मनोहर ने आन्दोलन की राह पकड़ ली। बिजली के तार काटे, पिता को जेल हुई। गांधी और नेहरू से भेंट हुई। मात्र 14 वर्ष की अल्पायु में उन्होंने 1924 के गया कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया। मैट्रिक परीक्षा 1925 में प्रथम स्थान पाकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इंटर की पढ़ाई काशी आकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पूरी की। प्रखर वक्ता एवं अद्भुत स्मरण शक्ति के इस छात्र को इतिहास में पढ़ाया गया कि देशभक्त शिवाजी 'लुटेरा सरदार था'' तो उन्हें सहन नहीं हुआ। 1926 के गोहाटी कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। पिता हीरालाल जी का व्यापार कलकत्ता में चल रहा था। अतः कलकत्ता आ गए। वहीं से बी.ए. किया। सन् 1928 के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के प्रबन्ध में काफी सक्रियता दिखाई। वहीं नेहरू जी की युवा शक्ति देखकर लोहिया जी ने उन्हें हृदय सम्राट कहा। लोहिया जी में चाट, गोलगप्पे खाने की आदत थी। खूब सिनेमा देखना, खूब पढ़ना, भाषण देना और तक्र करना उनका स्वभाव था। 1928 में नेहरू ने कलकत्ता में युवक सम्मेलन की अध्यक्षता की। यहीं पर लोहिया के प्रभावी दिमाग, भाषा, भाषण और राष्ट्र प्रेम से नेहरूजी खूब प्रभावित हुए। 1929 में लोहिया जी ने बी.ए. किया और आगे की पढ़ाई करने लन्दन चले गए। लंदन में अंग्रेजों के व्यवहार से वे काफी क्षुब्ध थे। लंदन इन्हें रास नहीं आया तो बर्लिन (जर्मनी) जा पहुंचे। बर्लिन विश्वविद्यालय के विश्व प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. वर्नर जेम्वार्ट को उन्होंने अपना अध्यापक बनाया। लोहिया जी ने तीन माह में ही जर्मन भाषा सीख ली। 1932 में बर्लिन विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि लेकर डॉ. लोहिया भारत लौटे। मद्रास बन्दरगाह पर उतरे तो कलकत्ता जाने का किराया भी उनके पास नहीं था। वे सीधे मद्रास के प्रसिद्ध समाचार पत्र ''हिन्दू'' के कार्यालय में गए ओर एक लेख लिखकर पच्चीस रूपए प्राप्त कर कलकत्ता पहुंचे। सामने विकट आर्थिक समस्या थी। कुछ दिनों बाद डॉ. लोहिया वाराणसी आकर पुराने मित्र प्रो. लालजी राम शुक्ल से मिले। लोहियाजी सिगरेट खूब पीते थे। सेठ जमनालाल बजाज के सम्पक्र में आए तो उन्हें लगा कि वे उन्हें अपना दामाद बनाना चाहते हैं।

****

उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि शादी कर घर बसाने का उनका इरादा नहीं है। लोहिया जी फिर लौट कर कलकत्ता आ गए। उन्होंने आजन्म कुंवारा जीवन बिताया।

1936 से 1938 तक लोहिया कांग्रेस के परराष्ट्र विभाग के मंत्री थे। वह एक गम्भीर विचारक, प्रबुद्ध नेता और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ के रूप में जाने जाते थे। इस विभाग में रहते हुए उन्होंने चीन और भारत, भारतीय विदेश नीति, विदेशी ठेकेदारों की लूट, सरकारी कर्मचारियों के वेतन विषयों पर पुस्तकें लिखी। नागरिक स्वतंत्रता के लिए लड़ाई नाम की पुस्तक पहले ही प्रकाशित हो चुकी थी।

वर्ष 1939 भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एवं विश्व राजनीति में काफी 7महत्वपूर्ण रहा। इस वर्ष कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस थे। कांग्रेस में एक विचार सुभाष बाबू का था जिसके अनुसार यूरोप में होने वाले युद्ध का भरपूर लाभ उठाया जाए और आजादी की लड़ाई में तीव्रता लाई जाए। दूसरी ओर गांधीजी की राय थी कि धैर्य से काम लिया जाए। लोहिया जी सुभाष बाबू के विचारों का समर्थन करते थे। किन्तु गांधीजी से इतने अभिभूत थे कि विरोध भी नहीं कर पाते थे। 1939 में ही मई में दक्षिण कलकत्ता कांग्रेस कमेटी द्वारा आयोजित एक सभा में लोहिया ने ब्रिटिश सरकार विरोधी भाषण दिया तथा सभा के तुरन्त बाद गिरफ्तार कर लिए गए। इस प्रकार 24 मई 1939 को लोहिया पहली बार जेल गए। दूसरे दिन ही कलकत्ते में इसके विरोध में भारी जुलूस निकला। लोहिया ने अपने मुकदमें की स्वयं पैरवी की और 14 अगस्त को लोहिया के विधि ज्ञान की प्रशंसा करते हुए इन्हें रिहा कर दिया गया।

7 जून 1940 को स्वराज भवन इलाहाबाद में भारी भीड़ के समक्ष लोहिया को दुबारा गिरफ्तार किया गया। उनको 11 मई को दोस्तपुर में दिए गए भाषण के लिए अपराधी माना गया। लोहिया को सुलतानपुर लाया गया। उन्हें कोतवाली के एक अंधेरे कक्ष में रखा गया। कोतवाली से कचहरी तक के तीन मील के रास्ते में हथकड़ी डालकर पैदल ले जाया गया। जुलाई 1940 को दो वर्ष की सख्त कैद की सजा दी गई। मजिस्ट्रेट ने लोहिया को उच्च श्रेणी का विद्वान, सुसंस्कृत तथा उत्तम सिद्धान्त एवं नैतिक चरित्र का व्यक्ति माना। 12 अगस्त को लोहिया बरेली कारागार भेज दिए गए। बम्बई की एक सभा में गांधी ने कहा ''जब तक डॉ. लोहिया जेल में हैं तब तक मैं चुप नहीं बैठ सकता। उनसे अधिक बहादुर और सरल आदमी मुझे मालूम नहीं। उन्होंने हिंसा का प्रचार नही किया है।'' अंग्रेजों पर दबाव के कारण 4 दिसम्बर 1941 को डॉ. लोहिया तथा अन्य नेता भी छोड़ दिए गए।

****

अप्रैल 1942 में लोहिया वर्धा में गांधीजी के पास एक सप्ताह रहे। वहां वे गांधी जी को निरन्तर अंग्रेजों से लड़ाई के लिए प्रेरित करते रहे। गांधी ने कहा ''अभी तक मैं ब्रिटेन से सहानुभूति रखता था। अब मेरा मन इस नैतिक समर्थन को भी अस्वीकार कर रहा है और फिर उन्होंने ''भारत छोड़ो'' और अहिंसात्मक असहयोग की भूमिका रखी जिसके लिए कांग्रेस के लोग यह मानते थे कि गांधी जी लोहिया के बहकावे में आ गए हैं। गांधी जी ने इसी अवसर पर ''करो या मरो'' का नारा दिया। आज से तय करें कि आजादी लेनी है। 9 अगस्त को ही गांधी जी गिरफ्तार कर लिए गए। कांग्रेस के अन्य बड़े नेता भी बन्दी बना लिए गए। 20 मई 1944 तक लोहिया ने भूमिगत आन्दोलन चलाया। इन दिनों उन्हें बहुत मुसीबत झेलनी पड़ी। इस भूमिगत जीवन में वह अंग्रेजी पहनावे में ही रहते। कोट, पैंट, टाई आदि लगाकर, मुंह पर काला दाग लगा लिया जिससे पुलिस पहचान न सके। वे अंग्रेजी हुकुमत की अधिक सख्ती होने पर नेपाल चले गए। हजारीबाग जेल से भागे जयप्रकाश नारायण भी नेपाल आ गए। मई 1944 में बम्बई में लोहिया जी गिरफ्तार हो गए। लाहौर जेल में उन्हें खौफनाक यंत्रणाएं दी गई। इसी जेल में जयप्रकाश नारायण भी यातनाएं भोग रहे थे। इसी बीच अचानक सरकार ने लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण को आगरा जेल भेज दिया। 1945 में महायुद्ध समाप्त हुआ। युद्ध के बाद ब्रिटेन कमजोर हो गया। 1944 के अन्त में गांधीजी एवं अन्य कांग्रेसी छोड़ दिए गए। जिन पर हत्या, डकैती एवं देशद्रोह के मामले थे उन्हें नहीं छोड़ा गया। उन कैदियो में लोहिया जी व जयप्रकाश नारायण भी थे। गांधी जी इनकी रिहाई के लिए भरसक चिन्तित थे, लेकिन उन की चल नहीं पा रही थी। लोहिया जी के पिता श्री हीरालाल जी आगरा जेल में लोहिया से मिलने आए। पिता पुत्र की यह अन्तिम भेंट थी। कुछ दिनों बाद जेल में ही तार मिला कि हीरालाल जी चल बसे। अप्रैल 1946 में लोहिया व जयप्रकाश आगरा जेल से छोड़ दिए गए। हंसते हुए दोनों नेता बाहर आए। लोहिया कलकत्ते एवं जयप्रकाश पटना चले गए। थके मांदे लोहिया 10 जून 1946 को विश्राम के लिए गोवा पहुंचे। गोवा में पुर्तगाली सरकार को उखाड़ फेंकने का बिगुल लोहिया ने बजाया। लोहिया कैद कर लिए गए तथा 19 जून को छोड़ दिए गए। सारे गोवावासियों में डॉ लोहिया ने प्राण फूंके जिससे आजाद गोवा की लालसा जागृत हुई।

फिर देश को आजाद करने का जब पता लगा तो देश के बंटवारे का लोहिया एवं गांधी ने घोर विरोध किया। गांधी ने यहां तक कह दिया कि देश का बंटवारा मेरी लाश पर होगा। लेकिन बंटवारे को पंडित नेहरू एवं पटेल स्वीकार कर चुके थे। अतः

****

गांधी को झुकना पड़ा। 1946 का वर्ष देश के लिए बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण था। कारण देश का विभाजन स्वीकार कर लेना। देश की आन्तरिक हालत बड़ी खराब थी। उत्तर भारत व बंगाल में सर्वत्र हिन्दू मुस्लिम दंगे हो रहे थे। खून की नदियां बहाई जा रही थी। मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना देश को खंडित करने पर आमादा थे। लोहिया दंगों को शांत करने एवं समझाने चट्टग्राम गए। लीगी लोगों ने लोहिया का सिर लाने के लिए दस हजार के इनाम की घोषणा कर दी। साथियों ने अपने घर में ले जाकर उनकी जान बचाई। नोआखाली में गांधी लोहिया दोनों ही काम कर रहे थे। लेकिन हिन्दु-मुसलमानों में शान्ति एवं सद्भाव पैदा करने हेतु गांधी चाहते थे कि लोहिया कलकत्ते चले जाएं। लोहिया कलकत्ता आए और सुधार कार्य में जुट गए। 15 अगस्त को स्वतंत्रता समारोह होना था। गुलामी को विदाई देनी थी। धूमधाम से स्वतंत्रता उत्सव मनाया गया। लेकिन कई जगहों पर वातावरण में हिन्दू-मुस्लिम एकता को लेकर भयंकर तनाव था। गांधी जी लोहिया को दिल्ली में ही रखना चाहते थे। गांधी ने कहा भी कि अब राम मनोहर के बिना मेरा काम कौन बढ़ाएगा?गांधी ने एक अवसर पर पुनः कहा कि राम मनोहर बहादुर है, बुद्धिमान है तथा एक गुण ऐसा हैं जिसमें तुम अच्छे हो और वह है शील।

एक बार शाम को प्रार्थना के बाद घूमने निकले गांधी जी लोहिया के कंधे पर हाथ रखकर बोले ''तुम सिगरेट पीते हो, चाय और काफी भी बहुत पीते हो। यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है। गांधी की बात मानकर लोहिया ने सिगरेट पीना छोड़ दिया। यह सुनकर गांधी जी अत्यंत प्रसन्न हुए। 26 जनवरी 1948 को गांधी ने लोहिया से कहा कि तुमसे विस्तार से बातें करनी है। समय नहीं है। अतः तुम मेरे सोने के कमरे में ही सोना। लेकिन रात में लोहिया को नींद लग गई। गांधी ने संकोच वश उठाया नहीं। 29 जनवरी को पुनः भेंट हुई तो कहा कि कल शाम अवश्य आना। कल पेट भर बातें होंगी।

पर दुर्भाग्य देश का। कांग्रेस का एवं लोहिया का। पूर्व निश्चयानुसार 30 जनवरी 1948 की शाम लोहिया गांधीजी से भरपेट बातें करने निकले। रास्ते में ही समाचार मिला कि गांधीजी क्रूर हत्या के शिकार हो गए। लोहिया बिड़ला भवन की ओर लपके, भारी भीड़! पर गांधी न थे। कमरे में उनका मृत शरीर पड़ा था। लोहिया को पहली बार अनुभव हुआ कि मैं अनाथ हो गया। लोहिया ने कहा कि 'ईश्वर पर अटूट विश्वास रखने वाला, जिंदगी भर अहिंसा का प्रचार करने वाला, आज स्वयं हिंसा का शिकार हो गया। कितनी विपरीत घटना थी।' पुनः लोहिया बोल पड़े 'क्यों आज मेरे

****
साथ और देशवासियों के साथ ऐसे दगाबाजी की, क्यों इतनी जल्दी चले गए?'

गांधी की अन्तिम क्रिया से भी लोहिया को धक्का लगा। गांधी की लाश को सेना की गाड़ी में सजाकर गांधी के चेले साफ सुथरे कपड़े एवं जुते पहने शव के पास बैठ गए। युरोप तक के लोग शव के पीछे पैदल और टोपी उतार कर चलते हैं। भारत में भी शवयात्रा नंगे सिर एवं पैदल होती है। गांधी की अस्थियों को प्रवाह करने प्रयाग जा रही गाड़ी में वह भी सवार हो गए। दिल्ली से प्रयाग तक हर स्टेशन पर शोकाकुल जनता की भारी भीड़ अपने राष्ट्रपिता को श्रद्धांजलि देने खड़ी थी। यह दृश्य देखकर अकस्मात् एवं सम्भवतः जीवन में पहली बार लोहिया की आंखों में आंसू आ गए। जब नेहरू अस्थियों की गाड़ी पर प्रयाग में धोती, अचकन, टोपी, जुता पहने चढ़ने लगे तो लोहिया ने उनकी टांग खींची और कहा, 'जूते पहन कर पवित्र गाड़ी पर चढ़कर गांधी के प्रति कैसी श्रद्धा दिखा रहे हैं।' इन बातों का नेहरू के लिए कोई महत्व नहीं था। लोहिया ने समझ लिया कि सत्य, ईमान और विश्वास के रूप गांधी के चले जाने के बाद देश का अधःपतन प्रारम्भ हो गया। उनका धर्मपिता, धर्मगुरू सदा के लिए चला गया था और लोहिया ने ही उनके सूत्रों को आजीवन जीवन्त रखा।

गांधी जी अपने अन्तिम दिनों में कांग्रेस को भंग कर 'लोक सेवा संघ' का रूप देना चाहते थे। वे यह भी चाहते थे कि इसका संचालन समाजवादियों के हाथ में रहे। लेकिन बात नहीं बनी। 1948 मार्च में नासिक सम्मेलन में सोशलिस्ट दल ने कांग्रेस से अपने को अलग कर लिया। नासिक सम्मेलन में ही देश की 650 रियासतों को समाप्त कर देश में मिलाने का निश्चय किया गया। लोहिया ने पहले ही कह दिया था 'अब हिमालय पर देश का कुदरती सरंक्षक रहने का खतरा पैदा हो गया है।' उनका कहना था नेपाल की जनक्रान्ति भी नेहरू के कारण विफल हो गई। उन्होंने कहा था कि नेहरू चीन की भावनात्मक दोस्ती से भ्रान्त हैं। 1959 के आते-आते भारत चीन की दोस्ती समाप्त हो गई जिसकी दुःखद परिणति 1962 के युद्ध में पराजय से हुई। लोहिया की प्रेरणा से नेपाल में नेपाल कांग्रेस की स्थापना हुई।

नेपाली कांग्रेस के समर्थन में प्रदर्शन का नेतृत्व कर रहे लोहिया को गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिन छोड़ दिया गया। पुनः सरकार का विरोध दिवस मनाने के कारण फिर गिरफ्तार कर लिया गया और 2 जुलाई को पुनः छोड़ दिया गया। लोहिया मानते थे कि काश्मीर का प्रश्न राष्ट्र संघ में ले जाकर हमारे देश ने भारी भूल की है। स्वार्थ एवं राजनीतिक गुटबाजी की लड़ाई में उस समय लोहिया के सार्थक विचारों की

****
भी अनदेखी की गई। लोहिया ने 1949 में कहा था कि यूरोप में हर व्यक्ति के पीछे 3 हजार रूपए तथा अमेरिका में 8 हजार रूपए की पूंजी उद्योगों में लगी हैं। जब कि भारत में मात्र 150 रूपए ही है। ऐसी स्थिति में बड़े पैमाने पर चलने वाले कल कारखानों को चलाना इस देश में लागत पूंजी के अभाव में नामुमकीन है। अतः छोटी मशीनों पर चलने वाले उद्योग से ही देश का उत्पादन बढ़ सकता है। देश के गांवों एवं शहरों में कच्चे माल की विपुलता है। देश ने लोहिया की बात मानी नहीं। नतीजा बेकारी एवं बेरोजगारी मुंह बाएं भयंकर रूप में खड़ी है। लोहिया ने कहा- समाजवाद, आजादी, अहिंसा में जो सत्य निहित है वही इस शताब्दी की महान देन है।

अपनी विदेश यात्रा के दौरान लोहिया विश्व के महानतम वैज्ञानिक आईन्स्टीन से मिले। आईन्स्टीन ने लोहिया को स्वतंत्र बुद्धि का आदमी माना और लोहिया की भेंट को अच्छे मनुष्य से मुलाकात की संज्ञा दी। आईन्स्टीन से लम्बी वार्ता के पश्चात् लोहिया ने अनुभव किया कि मानवता की गहराई गांधी एवं आईन्स्टीन दोनों में समान रूप से विद्यमान थी। सोशलिस्ट पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, शुद्ध सोशलिस्ट पार्टी बनाकर भी लोहिया एक ठोस धरातल पर कोई संगठन खड़ा न कर सके। देश-विदेश में अपने स्पष्ट विचारों के कारण खूब सम्मान अर्जन किया। संसद में भी पहुंच कर सरकार के सामने मुसीबत खड़ी कर दी। लेकिन राजनीति में बिना ठोस संगठन के अपने कार्यक्रम को क्रियान्वित करना संभव नही होता।

समाजवाद की लड़ाई लड़ते-लड़ते लोहिया का हृदय कमजोर हो गया था। रक्त-चाप परेशान करने लगा था। थकान लगी रहती थी। फिर भी यात्राएं करते थे। 1967 के 30 सितम्बर को दिल्ली के विलिंगडन अस्पताल में लोहिया की पौरूष ग्रंथी का आपरेशन किया गया। 11 अक्टूबर की रात एक बजकर 5 मिनट पर जब 12 अक्टूबर हो चुका था, लोहिया ने अपनी इहलीला समाप्त कर दी। सारे देश के नेता आए। राजनारायण चीत्कार कर उठे। जय प्रकाश सुबक उठे, बालकृष्ण सखाविहीन हो गए। कर्पूरी ठाकुर द्रवीभूत हो गए। लोक सभा की श्री जाती रही। सरकार का विरोधी नहीं रहा। समाजवाद अनाथ होकर रह गया। भारतमाता ने आज फिर अपने एक सच्चे सपूत को मात्र सत्तावन वर्ष की उम्र में खो दिया। सारा जीवन संघर्ष एवं अन्याय का प्रतिकार करने वाला सच्चा समाजवादी 'समाजवाद का पुरोधा' दुनियां से उठ गया।

-दीनानाथ झुनझुनवाला

राजस्थान की मरूभूमि पर गंगा उतार लाने वाला

डॉ. कंवर सेन

वतंत्र भारत में नदी-घाटी परियोजनाओं व जल संसाधनों की तकनीक को विकसित व उन्नत करने वालों में हरियाणावासी डॉ. कवंर सेन अग्रवाल का नाम अग्रणी है। परन्तु विलक्षण तकनीकी मेधा के धनी इस महापुरूष को आज भुला दिया गया है। राजस्थान की विश्व विख्यात इंदिरा गांधी नहर परियोजना जैसी विलक्षण परियोजना की परिकल्पना का सारा श्रेय डॉ. कवंरसेन को ही जाता है। भाखड़ा बांध, दामोदर घाटी, कोसी, नर्मदा, हीरा कुण्ड, राजस्थान नहर व देश की अन्य महत्वपूर्ण परियोजनाओं को साकार करने में डॉ. कवंरसेन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी असाधारण जल संसाधन इंजीनियरिंग मेधा के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ ने उन्हें 9 वर्षों तक विशेषज्ञ के रूप में रखा। यहां डॉ. कवंर सेन ने अन्तर्राष्ट्रीय परियोजना ''मेकोंग'' को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जो उनके लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। 1956 में डॉ. कवंर सेन को उनकी राष्ट्र के प्रति विशिष्ट और उल्लेखनीय सेवाओं के लिए राष्ट्रपति ने ''पदम भूषण'' से सम्मानित किया। डॉ. कवंर सेन अपने कैरियर को एक मामूली से आप्रेन्टिस इंजीनियर के रूप में पंजाब के सिंचाई विभाग में अक्टूबर 1922 से शुरू करके देश के केन्द्रीय एवं विद्युत आयोग के अध्यक्ष के शीर्ष पद पर पहुंचे।

डॉ. कवंर सेन का जन्म सन् 1900 में तत्कालीन संयुक्त पंजाब के कस्बे सुनाम में उनके नाना के घर हुआ। परन्तु उनका लालन-पालन व आरम्भिक शिक्षा उनके पैतृक कस्बे टोहाना (हिसार) में हुई। कुछ समय वे हिसार के सी.ए.वी. स्कूल में भी पढ़े। लाहौर से उन्होंने दसवीं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। तदनन्तर रूड़की कॉलेज से इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त की।

अपने जीवन के आरम्भ में सेन जब रूड़की कॉलेज के विद्यार्थी थे, तभी उन्होंने मन ही मन संकल्प लिया था कि वे एक इंजीनियर के रूप में अपनी समस्त योग्यताओं व क्षमताओं का उपयोग देश की सेवा में ही करेंगे। डॉ. कवंर सेन जब तक जीवित रहे अपने इस संकल्प पर डटे रहे। उन्होंने अपने सपनों को साकार ही नहीं किया अपितु जल संसाधनों के विकास एवं प्रवर्द्धन के इतिहास में अपने आप को एक 'मील पत्थर' के रूप में प्रतिष्ठित कर दिखाया।

भारत सरकार द्वारा अप्रैल 1947 में उन्हें केन्द्रीय जल एवं विद्युत आयोग के मुख्य अभियंता का पद भार संभालने के लिए आमंत्रित किया गया। इस पद पर कार्य करते हुए डॉ. कवंर सेन को दुबारा अमेरिका के ब्यूरो ऑफ रिक्लेमेशन के सहयोग से कोसी नदी पर बनाए जाने वाले बांध व भाखड़ा बांध का डिजाइन तैयार करने के लिए अमेरिका भेजा गया। 1953

में उन्हें केन्द्रीय जल एवं विद्युत आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

विशिष्ट परामर्श के लिए अमेरिका ने उन्हें सात बार बुलाया। अमेरिका के अतिरिक्त उन्हें फ्रांस, जर्मनी, चीन, जापान, सोवियत संघ, फिलीपाइन्स, युगोस्लाविया, थाइलैंड व ताइवान आदि अनेक देशों ने आमंत्रित किया। 1947 में समय से पूर्व ही भाखड़ा बांध के पानी के बंटवारे को लेकर हुए मतभेद होने पर अपना पद त्याग दिया। दर असल हुआ यह था कि मई 1947 में पंजाब विधानसभा में यह पारित कर दिया था कि जिला हिसार को भाखड़ा का जल नहीं दिया जाएगा।

गौरतलब है कि जिला हिसार में ही उनका गृह नगर टोहाना भी था। यह इस तक्र के आधार पर किया गया कि अगर जिला हिसार को पानी दिया गया तो फौज की भरती बंद हो जाएगी। डॉ. कवंरसेन को अपने बचपन से बखूबी याद था कि अंग्रेजों ने भी जानबूझ कर इस क्षेत्र में सिंचाई के प्रबंध नहीं किए ताकि उन्हें स्थाई रूप से भाड़े के सैनिक आसानी से मिलते रहें। स्वतंत्र भारत में भी उसी द्वेषपूर्ण नीति का पालन होते देख कर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने जिला हिसार को पानी दिए जाने के पक्ष में घोर तक्र दिया।।

उस समय उनकी अभूतपूर्व योग्यता को देखते हुए राजस्थान के बीकानेर के महाराजा ने उन्हें अपनी रियासत में बुलवा लिया। हालांकि उन्हें बीकानेर के चीफ इंजीनियर के पद पर मात्र 800 रूपए मासिक मिलने थे। जबकि यहां वे 17 सौ रूपए मासिक पा रहे थे। परन्तु स्वाभिमानी सेन ने आत्म-सम्मान के लिए इतने कम वेतन पर भी काम करना स्वीकार किया। बीकानेर रहते हुए उन्होंने बीकानेर रियासत को पाकिस्तान में न जाने में अहम् भूमिका निभाई। देशभक्त सेन ने अपने प्रभाव का इस्तेमाल करते हुए बीकानेर महाराज को पाकिस्तान में मिलने से रोका। तब भारत सरकार ने बीकानेर के शुष्क इलाकों की सिंचाई के लिए पानी का कोई प्रबंध नहीं किया गया था। दूसरी ओर पाकिस्तान ने बीकानेर को नहरी पानी देने का वायदा कर लिया था। परन्तु सेन के प्रयासों से बीकानेर पाकिस्तान में जुड़ते-जुड़ते रह गया। यह भी उनके अकाट्य तर्कों का ही परिणाम था कि भाखड़ा हैड वर्क्स पाकिस्तान को जाते-जाते भारत में ही रह गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन अपना कार्यकाल पूरा करने के बाद 71 वर्ष की आयु में वे दिल्ली आ कर बस गए और बतौर सलाहकार जीवन के अन्तिम क्षणों में भी जल परियोजनाओं के संबंध में अपनी अमूल्य राय देते रहे। हरियाणा सरकार को उनकी जलोत्थान योजनाओं और राजस्थान की सरकार को सिंचाई संबंधी समस्याओं के संबंध में दिए गए उनके सुझावों से जनता को बहुत लाभ पहुंचा। मृत्यु-पर्यन्त देश की जल परियोजनाओं के निरन्तर विकास की सोच करने वाला यह आधुनिक भगीरथ डॉ. कवंर सेन 24 सितम्बर 1988 को बोलते-बोलते हमेशा के लिए अबोल हो गया।

बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि भारत में ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जल संसाधनों से संबंधित तकनीकी ज्ञान विकसित करने के अलावा इन्होंने इस विषय के पाठ्यक्रमों के विकास के लिए भी अनेकों मौलिक पुस्तकें लिखी। भारत में उनका नाम विश्वैशरया (M. Vishvesrya) के साथ लिया जाता था। यदि डॉ. कवंर सेन को नदी-घाटी परियोजनाओं का जनक कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

****

डा. सेन जिन संस्थानों से जुड़े रहे उनकी सूची इतनी विशाल है कि उसका विवरण यहां सम्भव नहीं। उनके द्वारा लिखे गए शोधपत्रों, पुस्तकों व रिपोर्टों की संख्या भी अनगिनत है। डॉ. सेन को उनके वैज्ञानिक शोध के लिए दिए जाने वाले विशेष पुरस्कारों, मैडलों व प्रशस्ति पत्रों इत्यादि की फेहरिस्त भी कम लम्बी नही है। डॉ. कवंर सेन द्वारा अनोखी व्यूह रचना से रची देश की महत्ती सिंचाई परियोजनाओं के लिए उन्हें सदैव याद किया जाएगा।

राजस्थान की मरूभूमि के प्रति सेन का अगाध लगाव था और उनके प्रेम का प्रतिफल है इन्दिरा गांधी नहर। इस प्रोजेक्ट को तैयार करने के लिए डॉ. सेन ने वर्षों रेगिस्तान की खाक छानी। भारत सरकार के मंत्रालयों के फाईलों के जंगल में इस महत्ती योजना की फंसी फाइलों को सरकवाने और अधिकारियों, राजनेताओं को इस योजना से सहमत कराने के लिए उन्हें अथक परिश्रम करना पड़ा। आखिर डॉ. सेन ने विश्व की अद्भुत और अपने आप में अकेली व जटिल परियोजना को साकार करने का कमाल कर दिखाया।

राजस्थान नहर की परिकल्पना डॉ. कवंर सेन के शब्दों में--''राजस्थान नहर का निर्माण मेरी वर्षों पहले की साध थी, वह एक ऐसी कल्पना थी जिसे संभवतः लोग चांद छूने के समान असंभव मानते रहे हों। मैं जानता हूं कि आज भी इसके इस साकार स्वरूप में आने की बात यहां उपस्थित बहुत से लोगों को एक कल्पना मात्र लगती होगी। विज्ञान के इस बेमिसाल युग में ऐसे ही दुष्कर सपने साकार हुए हैं और मनुष्य के बुद्धि-कौशल द्वारा निर्मित इस विशाल नहर का सपना भी आने वाले वर्षों में सत्य हो कर ही रहेगा।'' ये उद्गार उन्होंने राजस्थान नहर के शिलान्यास के अवसर पर प्रकट किए।

राजस्थान के मरू प्रदेश को हरीतिमा में बदलने वाली इन्दिरा गांधी नहर निर्माण के उन के योगदान की याद को चिरस्थायी रखने के लिए राजस्थान सरकार ने बीकानेर-लुणकरणसर लिफ्ट नहर का नाम ''कंवर सेन लिफ्ट नहर'' रखा है। राजस्थान में हर साल उनकी स्मृति में व्याख्यान माला का आयोजन किया जाता है। बड़े शर्म की बात है कि दुनियां भर में हरियाणा का नाम चमकाने वाले इस महापुरूष की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए हरियाणा सरकार ने कुछ भी नही किया।

डॉ. कवंर सेन को अपने गृहक्षेत्र टोहाना से भी बड़ा लगाव था। यहां से दूर जाने पर भी उन्होंने इसे कभी भुलाया नहीं। सेन जब बालक थे, तब इस क्षेत्र को श्रोतों का क्षेत्र कहा जाता था। श्रोतों का क्षेत्र होने के कारण यहां केवल मोटे अनाज की ही नाम मात्र खेती होती थी। पानी बहुत नीचे था, लगभग चालीस हाथ नीचे।

हर दूसरे-तीसरे साल यहां अकाल व सूखे की सी स्थिति हो जाती थी। घग्घर नदी इस क्षेत्र से गुजरती है, सो बाढ़ की मार भी पड़ती थी। इस प्रकार आम जनता की हालत बड़ी दयनीय थी। यह सब देख कर सेन के संवेदनशील बाल मन को बड़ी ठेस लगा करती थी। मौका आने पर 13 जून 1954 को टोहाना में भाखड़ा नहर ला कर उन्होंने क्षेत्र के लिए खुशहाली के द्वार खोल दिए। इसी नहर की बदौलत टोहाना का मरू प्रदेश फसलों से लहलहा उठा है। टोहाना के साथ लगने वाले लगभग 100 गांवों में आजकल धान, कपास, गन्ना व गेहूं की इतनी भरपूर फसल होती है कि मंडियों में तिल भर जगह नहीं बचती।

- डॉ. श्याम भारती, टोहाना, हरियाणा

भारत के महान इंजीनियर व कृषि-क्रान्ति के सूत्रधार

सर-गंगाराम

सन् 1968 की घटना है। एक विद्यार्थी नौकरी की खोज में लाहौर में घूम रहा था। उसके एक परिचित व्यक्ति पुरोहित जी रहा करते थे। वह घूमता-घूमता उन्हीं के कार्यालय में चला गया। पुरोहित जी उस समय वहां न थे। फर्श कड़ा था, साथ ही विद्यार्थी को ज्ञान भी न था, अतः वह कार्यालय की सबसे सुन्दर और आरामदायक कुर्सी पर बैठ पुरोहित जी का इंतजार करने लगा। वह कुर्सी मुख्य इंजीनियर साहब की थी। थोड़ी देर बाद जब इंजीनियर साहब आए तो उन्होंने उस बालक को कुर्सी पर से उठा दिया। बालक का मन अपमान से तिलमिला उठा। उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि वह एक न एक दिन उसी कुर्सी पर आकर बैठेगा।

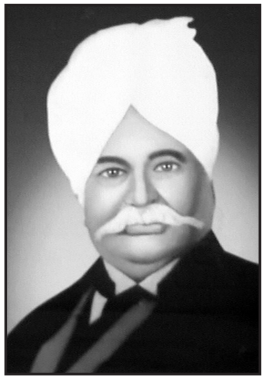

यह बाल्यकाल का संजोया स्वर्णिम स्वप्न था, किन्तु कौन जानता था, यह मेधावी बालक एक दिन अपने स्वप्न को साकार कर लेगा। उस बालक ने केवल अपने स्वप्न को साकार ही नहीं किया, लगातार 12 वर्ष तक उसी इंजीनियर पद पर आसीन रह कर उसकी गरिमा को बढ़ाया भी। यह बालक और कोई नहीं, अग्रवाल समाज का रत्न सर गंगाराम था। वह गंगाराम, जिनका नाम लेते ही भारत के एक महान इंजीनियर, प्रबल समाज-सुधारक, विधवा-हितैषी और हरित-क्रान्ति के अग्रदूत का चित्र आंखों के आगे झिलमिलाने लगता है।

सर गंगाराम धन-दौलत से हीन श्री दौलत राम के घर जन्मे किन्तु इतनी दौलत पैदा की और इतना धन सार्वजनिक एवं लोकोपकारी कार्यों में खर्च किया कि वे दौलत के सच्चे राम बन गए। उनके जीवन की कहानी बड़ी ही प्रेरणादायक और रोमांचक है। माता-पिता उत्तर-प्रदेश के रहने वाले थे किन्तु परिस्थितियों से विवश हो लाहौर से 40 मील व ननकाना साहिब से 14 मील दूर मंगतवाला में आकर बस गए थे। इसी वीरभूमि पर अप्रैल मास की 13 तारीख, बैसाखी के दिन, 1851 में लाला दौलतराम के घर शहनाई बजी और गंगाराम का जन्म हुआ। बालक के जन्म के साथ परिवार पर एक के बाद दूसरी विपत्तियां आकर मंडराने लगी। किन्तु महान विभूतियां तो कष्टों में पल कर ही अपना निर्माण करती है। गंगाराम बड़े ही कुशाग्र बुद्धि थे। अल्पावस्था में ही एक साथ दो-दो कक्षाएँ उत्तीर्ण करने लगे और साथ ही कक्षा में सबसे

ऊंचा स्थान प्राप्त कर 'पूत के पांव पालने में छिपे नहीं रहते' कहावत को चरितार्थ करने लगे। उन्हें अपने जीवन-निर्माण की चिन्ता थी, इसलिए पढ़ाई के साथ पिताजी के कामों में भी हाथ बंटाते। पिताजी कार्यालय से कागजों का पुलन्दा घर पर ले आते और बाप व बेटा दोनों मिल कर उसे पूरा करते।

मैट्रिक पास करने के उपरान्त लाहौर के राजकीय महाविद्यालय में प्रवेश लिया। यह वह कॉलेज था, जहां छात्र खूब ठाठबाठ से रहते थे। किन्तु गंगाराम को इन सबसे क्या मतलब?वे छात्रवृत्ति लेकर अध्ययन कर रहे थे। यहीं उनके जीवन में एक ऐसी घटना घटित हुई, जो उनके भावी जीवन-निर्माण की दिशा-सूचक बनी। गंगाराम वहां एक कमरा किराए पर लेकर पढ़ा करते थे। कमरे के फर्श में एक छिद्र था, जिसके द्वारा नीचे कुए से पानी खींचा जाता था। उसके चारों ओर किसी प्रकार की बाड़ आदि न थी। बालक गंगाराम गणित की किसी जटिल समस्या के समाधान में मस्त कमरे के एक कोने से दूसरे कोने का चक्कर लगा रहे थे। अचानक पांव फिसला और गंगाराम धड़ाम से कुएं में। मालिक के नौकर कालू ने सौभाग्य से उसे देख लिया और येन-केन-प्रकारेण कुएं से बाहर निकाल लिया।

इस घटना का श्री गंगाराम पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने मन ही मन अनुभव किया कि हो न हो, परमात्मा ने उनकी जीवन रक्षा जरूर किसी न किसी महर्षि उद्देश्य के लिए की है। ज्यों-ज्यों वे इस घटना पर विचार करते, उनके मन में महर्षि जीवन की प्रेरणा हिलोरे लेने लगती। इस घटना ने उनके जीवन में एक क्रांतिकारी मोड़ स्थापित किया। उनमें अपने आपको महान बनाने की एक लहर सी दौड़ पड़ी। 1871 में वे रूड़की के टामसन इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रविष्ट हुए और इंजीनियरिंग परीक्षा सम्पूर्ण विश्वविद्यालय में तृतीय स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की। प्रोजेक्ट पेपर में उनका स्थान प्रथम था। उन्हें स्वर्ण पदक मिला। चारों ओर उनकी प्रतिभा की ख्याति प्रसारित होने लगी। उस समय उनकी अवस्था मात्र 22 वर्ष की थी।

शीघ्र ही वे लाहौर में सहायक इंजीनियर के पद पर नियुक्त हो गए। उनकी नियुक्ति के दो वर्ष बाद 1875 में प्रिंस ऑफ वेल्स का लाहौर में आगमन हुआ। उनके स्वागत का प्रबंध श्री गंगाराम को सौंपा गया और उन्होंने बड़ी ही सफलता के साथ अपने दायित्व को निभाया। उसके परिणाम स्वरूप 1877 में दिल्ली में होने वाले दरबार की व्यवस्था ओर निर्माण कार्य आपको विशेष रूप से सौंपा गया। आपने उनका निर्माण बड़ी भव्यता से किया। बाहर से आए विदेशी लोग रंगशाला को देख मंत्रमुग्ध हो गए। सर लार्ड रिपन तो उनकी इस महान् योग्यता को देख खूब प्रभावित हुए। इसी समय उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेजे जाने वाले छात्रों की सूची तैयार हो रही थी। श्रीगंगाराम ब्रेडफोर्ट भेजे जाने वाले उम्मीदवारों में चुने गए। वहां उन्होंने वाटर वर्क्स और गंदे पानी

के निष्क्रमण हेतु नालियों के प्रबंध का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इससे उनकी प्रतिष्ठा और बढ़ी। इंजीनियरिंग के क्षेत्र में श्री गंगाराम की प्रतिभा महान थी। उन्होंने अम्बाला, करनाल, गुजरांवाला, पेशावर जैसे बड़े शहरों के लिए जल-योजनाएं तैयार की। उत्तरी-पश्चिमी रेलवे की अमृतसर-पठानकोट रेलवे निर्माण की सम्पूर्ण योजना प्रस्तुत करने का श्रेय भी आपको मिला। लाहौर में नियुक्ति होने के बाद आपने वहां एक से एक शानदार भवनों की श्रृंखला खड़ी कर दी। लाहौर के अजायबघर, गिरजाघर, एचिंगसन चीफ्स कॉलेज, मेयो स्कूल ऑफ आर्ट्स, मुख्य डाकघर, गवर्नमेंट कॉलेज की प्रयोगशाला, मेयो हस्पताल के एलवर्ट विक्टर विभाग की विशाल और भव्य इमारतों को आपने खड़ा किया। लायलपुर, सरगोधा, शेखपुरा में भी अनेक इमारतें आपकी देखरेख में बनी। आपकी वास्तुकला में पूर्व और पश्चिम की कला का सुंदर सामंजस्य था। उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी- कम लागत पर भव्य निर्माण। उस समय लाहौर में गंदगी का साम्राज्य था। आपने पुराने लाहौर में पक्की सड़कें बनवाई, गलियों की दशा सुधारी और स्थान-स्थान पर साफ-सुथरी नालियां बनवायी। इससे यहां मलेरिया व हैजे का प्रकोप कम हो गया। लोगों ने बड़ी श्रद्धाभरी दृष्टि से श्री गंगाराम के इन कार्यों को देखा।

सरकार को भी आपकी प्रतिभा ने मोह लिया। आपको रायबहादुरी की उपाधि से सम्मानित किया गया। अनेक खिताब प्रदान किए गए और पंजाब प्रान्त में इंजीनियरिंग के सबसे ऊंचे पद पर आपकी नियुक्ति की गई। कहते हैं, एक दिन उन्होंने उसी इंजीनियर से पदभार संभाला, जिसने कभी उन्हें अपनी कुर्सी से हटा दिया था। वे लगभग 12 वर्ष तक इंजीनियर के पद से देश सेवा करते रहे। उन्होंने अनेक नए यंत्रों एवं निर्माणविधियों का आविष्कार किया। श्री गंगाराम ने 27 वर्ष की राजकीय सेवा में पर्याप्त यश और प्रतिष्ठा को अर्जित किया, किन्तु परमात्मा ने उनके भाग्य में और भी यश लिखा था। 1900 में एडवर्ड अष्टम के राजगद्दी पर बैठने की खुशी में देहली में एक दरबार का आयोजन किया गया। यहां के कार्य की देखभाल के लिए आप लार्ड कर्जन द्वारा अधीक्षक बना कर भेजे गए। लार्ड कर्जन काम लेने में बड़े कठोर समझे जाते थे। अनेक अंग्रेज इंजीनियरों के होते हुए भी उनकी इस भारी उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर नियुक्ति एक असाधारण बात थी। विरोधी उन्हें नीचा दिखाने की हर कोशिश में थे। किन्तु आप बड़ी कुशलता से इस कठोर परीक्षा में भी सफल हुए। सरकार ने शानदार ढंग से इस कार्य को अंजाम देने में आपको सी.आई.ए. की विशिष्ट उपाधि से सम्मानित किया। 1911 के देहली के इम्पीरियल दरबार में भी आपको इसी प्रकार की उल्लेखनीय सफलता मिली और सरकार ने आपको एम.बी.ओ. की उपाधि से पुनः विभूषित किया।

इनकी असाधारण योग्यता से प्रभावित हो मालवीय जी ने आपको काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माणार्थ आमंत्रित किया। आपने विश्वविद्यालय के भवन निर्माणार्थ न

केवल अवैतनिक सेवाएं ही दी अपितु 1 लाख रूपए अपनी ओर से गंगनहर बनाने के लिए भी प्रदान किए, ताकि इंजीनियरिंग के विद्यार्थी काम सीख सकें। श्री मालवीय जी उनके इस सेवा कार्य से बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने लिखा कि ''विद्यालय की इमारत का कोना-कोना लाला गंगाराम जी का ऋणी रहेगा।''

सर गंगाराम को सरकारी सेवा से निवृत्त होते समय चिनाब नदी क्षेत्र में 20 टुकड़े जमीन उपहार स्वरूप मिली। उनका ध्यान इस बात की ओर गया, जो जमीन काफी ऊंची होने के कारण सींची नहीं जा सकती, उसे कैसे हराभरा बनाया जा सकता है?उन्होंने सरकार से कुछ बंजर जमीन ली और नहर में मशीन लगा कर पानी को ऊपर उठाया और इंजिनों द्वारा सारी बंजर भूमि को पानी से तर कर दिया। बंजर जमीन हरे-भरे खेतों में लहलहा उठी। 1924 में ही उन्होंने रबी की फसल से 12 लाख रूपए की फसल प्राप्त की। उन्हें देश में हरित क्रांति का प्रथम जनक कहा जा सकता है।

एक निर्धन परिवार में जन्म लेकर सर गंगाराम ने लाखों रूपए अपनी प्रतिभा और बुद्धि कौशल से कमाए किन्तु उसका उपयोग उन्होंने खुले हाथ से दीन, अपाहिजों, विधवाओं की सहायता एवं लोकोपकारी सार्वजनिक कार्यों में किया। उस समय जबकि रूपए की कीमत आज से पचासों गुना थी, सर गंगाराम 76 वर्ष की अवस्था तक तीस लाख रुपए से अधिक राशि दान और सत्कार्यों में खर्च कर चुके थे। इस प्रकार धन के सद्व्यय का उन्होंने उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने अपाहिजों की सहायता के लिए 'हिन्दू अपाहिज आश्रम' की स्थापना एक लाख पचास हजार रूपए की लागत से की। सन् 1947 में श्री गंगाराम द्वारा स्थापित अनेक अपाहिज आश्रम, विधवा आश्रम, अस्पताल, कन्या विद्यालय, महाविद्यालय आदि लाहौर के विभिन्न स्थानों में चल रहे थे। दिल्ली का सर गंगाराम हॉस्पिटल आज भी उनकी स्मृति को ताजा किए है। उनके द्वार पर जरूरतमंदों की भीड़ लगी ही रहती थी। लाखों रूपए लगा कर उन्होंने लाहौर में भी सर गंगाराम हस्पताल बनवाया था। उन्होंने विधवा विवाह परिषद् की स्थापना की, जिसकी शाखाएं सम्पूर्ण भारत में थी और प्रतिदिन 1 विधवा विवाह कराने का निश्चय किया हुआ था। उनके प्रयत्नों से सैंकड़ो विधवा-विवाह हुए। असहाय विधवाओं की सहायता के लिए उन्होंने उद्योगशालाओं की स्थापना की हुई थी। उन्होंने इन सब कार्यों के लिए 1923 में एक ट्रस्ट की स्थापना की थी, जिसे उन्होंने अपनी अनेक इमारतें और प्रचुर मात्रा में सम्पत्ति प्रदान की थी। उनकी वार्षिक आय उस समय एक लाख पच्चीस हजार रूपये से अधिक थी, इससे उनकी सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। वास्तव में सर गंगाराम गरिबों के सच्चे बंधु, देश के महान सेवक, आदर्श समाज-सुधारक और उच्च्व मानवीय गुणों से सम्पन्न, अग्रवाल समाज के देदीप्यमान नक्षेत्र थे। उनकी कीर्ति और कार्य अमर है। भारत सरकार ने उनकी स्मृति में डाक टिकट प्रकाशित कर उनकी सेवाओं को मान्यता प्रदान की है।

– डॉ. चम्पालाल गुप्त

श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

यह संसार भगवान की अनन्त विभूतियों का विलक्षण संग्रहालय तथा महान आदर्शों का विचित्र रंगमंच है। विश्वबन्धुत्व में हनुमान प्रसाद जी पोद्दार की प्रबल निष्ठा ने उनको सबका 'भाई' बना दिया तथा सभी छोटे-बड़े उनको 'भाईजी' शब्द से ही संबोधित करते थे।

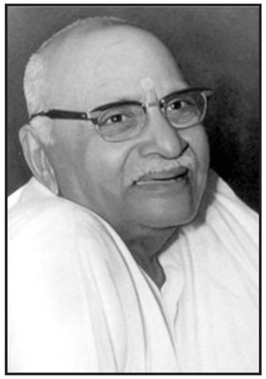

भाई हनुमानप्रसादजी का जन्म 17 दिसंबर 1892 को राजस्थान के रतनगढ़ नामक नगर में हुआ था। इनके पिता श्री भीमराज और माता रिखीबाई ऐसा शिशु पाकर धन्य हो गए। भीमराज जी के ज्येष्ठ भ्राता और धर्मपिता श्री कनीराम तथा उनकी पत्नी श्रीमती रामकौर देवी स्वयं निसंतान थे। पुत्र तृष्णा अपूर्ण रहने पर अपनी दत्तक पुत्रवधु को भी निसंतान देख कर अधीर थे। निम्बार्क पीठ के आचार्य मेहरदास जी की उन पर कृपा थी। अपने इष्ट श्री हनुमानजी को भी उन्होंने स्मरण किया। नाथपंथी महात्मा मोतीनाथजी (टूंटिया महाराज) को जब निःसंतान होने की बात ज्ञात हुई तो उन्होंने प्रसन्न होकर रामकौर देवी से कहा ''तेरे असामान्य पौत्र पैदा होगा, और कौन?मैं ही आऊंग?भावी बालक के लक्षण बताते हुए उन्होंने कहा- ''मस्तक पर श्री रेखा, कंधों पर बाल, दाहिनी जंघा पर काला तिल और मुंह में एक तार जिसे अंगुली डाल कर निकालने पर ही वह रोएगा।'' इसके बाद टूंटिया महाराज का शरीर शान्त हो गया। उधर बाबा मेहरदास जी ने भी पुत्र होने का आर्शीवाद दिया और बालक का नाम हनुमान जी के नाम पर रखने को कहा। इस प्रकार रिखीबाई को- 'पुत्रवती जुबती जग सोई, रघुपति भगत जासु सुत होई' का सुख मिल गया। सर्व प्रथम दादी ने बालक का नाम हनुमान बख्श रखा जो आगे चल कर हनुमान प्रसाद हो गया।

बालक अभी पांच वर्ष भी पूरे नहीं कर पाया था, माता का अप्रत्याशित निधन हो गया। दादी बालक को लेकर शिलांग चली गयी। शिलांग में अकस्मात् भूचाल आया। नगर के बड़े-बड़े प्रासाद धरातल की मिट्टी बनकर बिखर गए। बालक चिल्लाता रहा- 'दयालु दीनबन्धु के बड़े विशाल हाथ है।' काव्योक्ति चरितार्थ हो गई। पत्थरों की पट्टियां एक के ऊपर एक ऐसी गिरी कि बालक के लिए स्वयंमेव गुफा बन गई।

रतनगढ़ लौटने के बाद महादेवी से उनका विवाह हुआ, पुत्र हुआ। दो माह के भीतर नवजात शिशु भी अपनी माता के साथ स्वर्ग सिधार गया। कलकत्ता में स्वामी शंकरानन्द मद्रासी से भाईजी का सम्पक्र हुआ। वे अध्यात्म के साथ ही राजनीति की उग्रधारा में विश्वास करते थे। भाईजी के हृदय में विप्लवकारी विचारों की सृष्टि हुई। उनके पिता भीमराज के निधन के पश्चात् पैतृक व्यापार का संचालन उनके एक हाथ में तथा निवृत्ति मूलक अध्यात्म का सूत्र दूसरे हाथ में था।

कलकत्ता का हिन्दू क्लब, वैश्य समाज, हिन्दी साहित्य परिषद, साहित्य संवर्धिनी समिति, बड़ा बाजार पुस्तकालय तथा सावित्री कन्या पाठशाला इनकी विविध सेवाओं से उपकृत थे। कलकत्ता के शीतला मेले में इनके द्वारा गठित स्वयं सेवक दल ने बहुत काम किया। दीन दुखियों हेतु गुप्त सेवा की भी व्यवस्था की, जिसे कोई जान नही सकता था। भाई जी के हृदय में जन सेवा भावना, कुकृत्यों के प्रति घृणा एवं स्वदेश के प्रति अविचल अनुराग था। सन् 1906 में अखिल भारतीय कांग्रेस के (उग्रवादी) गरम दल में रह कर देश की मुक्ति के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया। मारवाड़ी युवकों ने मिलकर एक समिति का गठन किया। श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद सहित प्रकाशन किया गया। गीता की सैकड़ों प्रतियां आन्दोलनकारियों में वितरित की गई। ब्रिटिश विरोधी विप्लवकारियों के बीच गीता का सर्वाधिक प्रचलन हुआ। ''युद्धस्व विगतज्वरः निराविष्ट होकर युद्ध करो'' भगवान कृष्ण का यह उद्बोधक वाक्य पढ़-पढ़ कर सभी क्रान्तिकारी अर्जुन की भांति युद्ध हेतु सन्नद्ध हो गए। जयदयाल जी गोयन्यका के सम्पर्क में आने पर गीता प्रेस की स्थापना कर गीता का जनव्यापी प्रचार कराया। हिन्दू विश्वविद्यालय हेतु मालवीय जी को भाईजी के प्रभाव से कलकत्ता में विपुल धनराशि दान में दी गई। पद्मपुराण में भगवान शंकर का वचन है-

अर्यमित्वादी गोविन्दं तदीयान्र्नाच येत्पुनः।
न स भागवतो क्षेमः केवलं दाम्भिक स्मृतः।।

अर्थात्, जो मनुष्य श्री गोविन्द की पूजा करके उनके भक्तों की पूजा नहीं करता उसे भक्त नहीं जानना चाहिए, वह केवल दंभ करता है। पूजा का ढोंग करता है। इस दृष्टि से भाई जी एक साधु सेवा पुरूष थे। उनकी इसी सेवावृत्ति के आकर्षण से ही गीता वाटिका गोरखपुर एक पावन सन्त स्थली बन गई थी। सगुणोंपासक, निर्गुणोंपासक, सिख, जैनी, बौद्ध, पारसी, ईसाई, हिन्दू या मुसलमान यदि वह भगवद् भक्त है तो भाईजी के लिए वह आराध्य व वन्दनीय थे।

पराधीनता की पीड़ा भाईजी के हृदय में उतनी ही थी जितनी किसी देशभक्त राजनेता के हृदय में। भाईजी स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु चलने वाले सविनय अवज्ञा आन्दोलन को अहिंसात्मक शैली में संचालन कर रहे थे। दूसरे देश के उत्कट देशभक्त अपनी खूनी

****

क्रान्ति का सन्देश सुना रहे थे। भाईजी दोनों प्रकार के आन्दोलनों के सूत्र से सम्बद्ध थे। श्रीगोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, सुभाषचन्द्र बोस, अरविन्द घोष का भी स्नेह भाईजी को प्राप्त हुआ। गांधीजी का अत्यन्त निकट संपक्र भी मिला।। बंगाली क्रान्तिकारियों में भाईजी का नाम भी पुलिस ने दर्ज किया। 16 जुलाई 1914 को भाईजी तथा अन्य तीन साथियों को पुलिस ने राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिया। अन्ततोगत्वा ठोस प्रमाण के अभाव में राजद्रोह का मुकदमा समाप्त हो गया।। भाईजी खादी वस्त्र में अतीव आस्थावान थे। विदेशी वस्त्रों की होली उन्होंने जलाई। मारवाड़ी समाज में खादी की चुनरी आदि पहनने की प्रथा चलाई। भाईजी देश की स्वाधीनता के प्रत्येक अभियान में निरन्तर सम्मिलित होते रहे। देश स्वतन्त्र हो गया और भाईजी की सभी प्रकार की प्रवृत्तियों का सान्निवेश विशुद्ध अध्यात्मभाव में हो गया। एक अनासक्त योगी, भगवद् भक्त मात्र रह गए। भाईजी एक सद्गृहस्थ तथा एक विशुद्ध विरक्त संत थे। ऐसे मनुष्य जगत में विरले ही होते है।

गाय, गंगा, गीता और गोविन्द में उनकी परम आस्था थी। गोसेवा को अहिंसा वृत्ति जागृत करने का प्रबल साधन मानते थे। भाईजी के समक्ष एक ओर भागीरथी का आकर्षण था दूसरी ओर गीता की ज्ञान गंगा का मोह था। भाईजी अपना सर्वेश्वर मायापति गोविन्द को मानते थे। भाईजी का मानस राधा-गोविन्दमय हो गया था। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' का सत्य भाईजी के जीवन में उतरा था। ऐसा लगता था कि भाईजी ने अर्जुन के साथ ही, भगवान के इस उपदेश को सुना हो-

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षीष्यामी मा शुचः।

देह त्याग पर तो भाईजी राधामाधव और माधवराधा भाईजी हो गए। भक्त और भगवान दो के एक हो गए। 23 सितम्बर 1992 को भारत सरकार ने एक रूपया का डाक टिकट प्रकाशित कर उनको श्रद्धांजलि अर्पित की।

- गणेश शंकर गुप्त, लखनऊ

खतरनाक क्रांतिकारी घोषित किए गए थे : भाईजी

अनेक लोगों के लिए यह अकल्प्य ही होगा कि गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित प्रसिद्ध 'कल्याण' मासिक पत्र के यशस्वी संपादक तथा उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त स्व. हनुमानाप्रसाद जी पोद्दार किसी युग में बंगाल के सक्रिय क्रान्तिकारी रहे थे और उन्हे कलकत्ते की तत्कालीन एक विदेशी शस्त्र कम्पनी 'रोडा आर.बी.एण्ड कम्पनी' की आयातित 202 पेटियों से 80 माउजर, पिस्तौलों और 46 हजार कारतूसों को गायब करके विप्लवी दलों के हवाले कर देने के आरोप में गिरफ्तार किया गया था। परन्तु यह

****

मात्र ब्रिटिश सरकार का आरोप ही नहीं, एक सच था। कारण, हनुमानप्रसाद जी पोद्दार उन दिनों कलकत्ता की प्रसिद्ध विप्लवी संस्था 'अनुशीलन समिति' के विश्वस्त और सक्रिय सदस्य थे।

कलकत्ता में बंदूकों-पिस्तौलों और कारतूसों आदि की भारी पैमाने पर बिक्री करने वाली उक्त 'रोडा-कम्पनी' को अर्से से विदेशी ही चलाते आ रहे थे। क्रांतिकारियों ने निश्चय किया क्योंकि उन्हें पिस्तौलों कारतूसों की जरूरत थी और उन्हें खरीदने के लिए समिति के पास घोर धनाभाव भी था, अतः 'रोडा-कम्पनी' जो शस्त्रों की पेटियाँ जर्मनी आदि से बिक्री के लिए मंगाती है, उन्हीं में से कुछ पेटियां कब्जे में कर ली जाएं। इस काम के लिए जो लोग लगाए गए उनमें हनुमानप्रसाद पोद्दार भी थे।। उस कम्पनी में एक बंगाली क्लक्र था, शिरीषचन्द्र मित्र, यह 'अनुशीलन समिति' का ही आदमी था। समिति ने शिरीष मित्र को यह आदेश दिया कि वह 'रोडा-कम्पनी' की अनेक शस्त्र-पेटियां बजाए कम्पनी में पहुंचाने के समिति के ही लोगों को सौंप दे, जिसको छिपाने-लाने आदि की व्यवस्था हनुमानप्रसाद पोद्दार तथा उनके साथी करेंगे। फलतः योजना बनाकर शिरीषचन्द्र मित्र जब एक रोज नित्य की तरह रोडा-कम्पनी में काम करने पहुंचा तो ठीक उसी दिन उससे कम्पनी वालों ने कहा कि बन्दरगाह की समुद्री चुंगी दफ्तर से जिन बिल्टियों का माल छुडाना है वह छुड़ाकर ले आए। शिरीष बिल्टियां लेकर समुद्री चुंगी कार्यालय में जो 202 पेटियां आई थी, उन्हें छुड़ाकर चला। पेटियां उसने गिन ली थी, पूरी थी। जिनकी संख्या बिल्टियों में 202 दर्ज थी।।

यह बात है सन् 1914 के 26 अगस्त की। बुधवार का दिन था। शिरीष ने उन 202 पेटियों में से 192 पेटियां तो कम्पनी में पहुंचा दी, शेष जो 10 पेटियां और थी, इन 10 में से 80 पिस्तौल और 46 हजार कारतूस गुप्त रूप से बीच में ही गायब कर दिया गया। विप्लवी दल की योजना थी कि एक ही दिन, एक ही समय पूरे देश में, और फौजी छावनियों में भी क्रान्ति का शंखनाद कर दिया जाए। उसी के लिए 'अनुशीलन समिति' ने शिरीष मित्र व हनुमानप्रसाद पोद्दार आदि के द्वारा शस्त्रों की 10 पेटियां रोड़ा कम्पनी से उठवा ली थी। इन पिस्तौलों के नम्बर आदि कम्पनी के रजिस्टरों पर पहले से अंकित थे। यह बड़े आकार की 3-3 सौ बोर की होती है। इनमें से एक माउजर पिस्तौल चन्द्रशेखर आजाद के पास भी था। इनमें से 41 पिस्तौले बंगाल के क्रांतिकारियों को बांट दी गई। शेष 39 बंगाल से बाहर अन्य प्रान्तों को भेजी गई। काशी भी आई। आगे बंगाल के एक स्थान मामूराबाद में क्रांतिकारियों ने जो डाका डाला, उसमें पुलिस को पता चला कि इसी रोडा कम्पनी से गायब की गई माउजर पिस्तौलों का इस्तेमाल किया गया था। सरकारी अफसरों, अंग्रेजों आदि को मारने जैसे 54 काण्ड इन पिस्तौलों से ही संपन्न किए गए। ये सब काण्ड सन् 1914 के अगस्त के बाद ही किए गए। अस्तु शिरीष मित्र

****

जब वे 10 पेटियां बन्दरगाह की समुद्री चुंगी से छुड़ा लाया तो आगे उसके रख-रखाव और समिति को सौंपने आदि का निपटारा हनुमानप्रसाद जी पोद्दार ने ही किया। इस बीच शिरीष के साथ ही जिस बैलगाड़ी से वे पेटियां लाई गई थी, वह बैलगाड़ी और उसको हांकने वाला गाड़ीवान भी पता नहीं कहां अदृश्य हो गया। पुलिस और खुफिया पुलिस के लोग चतुर्दिक दौड़ धूप में व्यस्त हो गए। हनुमानप्रसाद जी ने, जो भारी संख्या में 46 हजार कारतूस हाथ लगे थे, उन्हें पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर (पत्रकार) और अपने एक जमादार सुखलाल द्वारा ठौर-ठिकाने तक पहुंचा कर छिपाने में सफलता प्राप्त की। अनन्तर शिरीषचन्द्र मित्र, हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, कन्हैयालाल चितलांगिया, फूलचंद चौधरी, ज्वालाप्रसाद कनोडिया, ओंकारमल सर्राफ के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी हुए। शिरीष मित्र तो मिले नही, हनुमानप्रसाद पोद्दार को पुलिस-दल ने एकाएक छापा मारकर स्ट्रीट लाईन स्थित कलकत्ता की 'बिरला-श्राफ एण्ड कम्पनी' से गिरफ्तार किया। पोद्दार जी उस कम्पनी में हिस्सेदार के नाते काम करते थे। शेष लोग भी पकड़ लिए गए और सभी को शुरू में दो सप्ताह तक 'डूराण्डा हाउस जेल' (कलकत्ता) में कैद रखा गया। ये कैदी 4 अलग-अलग बैरकों में बन्द किए गए। इन 15 दिनों में खुफिया पुलिस ने पोद्दार आदि सभी लोगों को फॉसी चढ़ाने, कालेपानी भेजने, पत्नी को अपमानित करने आदि की धमकियां देकर कहा- 'अपने बाकी साथियों के नाम पते बता दो तो बच जाओगे।' कई बंगाली तरूणों को बिजली के करंट आदि लगाकर यातनाएं भी दी गई। पर पोद्दार जी या उनके किसी साथी ने पुलिस के लालच और धमकियां देने के बावजूद कोई भेद नहीं दिया। अलबत्ता पोद्दारजी के उन दिनों मारवाड़ी समाज में वहां जो मित्र-स्नेही थे, वे आतंकित हो गए। पोद्दारजी का दिया सब साहित्य अपने घरों से जला-हटा दिया। कुछ ने तो अपने फंसने के भयवश पोद्दार जी को 'समाज का कलंक' तक कह डाला। इन पकड़े गए लोगों में पोद्दार जी के दो साथी कन्हैयालाल चितलांगिया और प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका के लिलुवा नामक स्थान के विप्लवी दल से संबंध थे। यों फूलचन्द चौधरी ने पोद्दारजी को रोडा कम्पनी काण्ड के पहले ही बता दिया था कि आपका नाम पुलिस के रजिस्टर की सूची में 'राजद्रोही' के रूप में दर्ज है और आप गिरफ्तार होंगे।' कारण, मार्च महीने (1914) में ही एक पुलिस-इन्स्पेक्टर ने फूलचन्द चौधरी से आकर कहा था- एक युवक ने आप लोगों का सब भेद बता दिया है कि आप लोग क्या करते हैं। किस दल में हैं। अतः उसकी सूचना से जो रिपोर्ट बनी है उसमें आप सबके नाम पते हैं। हनुमानप्रसाद पोद्दार का भी नाम है। अगर तुम 10 हजार रूपए मुझे दिला दो तो मैं थाने के सब कागज-पत्र गायब कर दूं।' यह बात हनुमानप्रसाद को भी बताई गई, पर वे रिश्वत देने के खिलाफ रहे।

****

एक फाइल हाथ लगी, उससे उसकी धारणा पुष्ट हो गई कि पोद्दार जी, फूलचन्द चौधरी आदि लोग क्रान्तिकारी दल के सदस्य जरूर हैं। आगे उसी ने 'रोडा कम्पनी काण्ड' के बाद इन सबकी गिरफ्तारी के आदेश जारी कराए। हनुमानप्रसाद पोद्दार पहले भी 'मानिकतल्ला बम-केस' जो 'रोडा कम्पनी काण्ड' के 6 साल पहले सन् 1908 में हुआ था उसमें और 'अलीपुर बम केस' में भी अभियुक्तों की पैरवी में बराबर व्यस्त रहे थे। इसी से पोद्दार जी का उन दिनों के प्रसिद्ध विप्लवी नेता अरविन्द घोष, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, डॉ. भूपेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द के भाई), ब्रम्हाबान्धव उपाध्याय, 'अनुशीलन समिति' (ढ़ाका) के प्रमुख पुलिस बिहारीदास, रासबिहारी बोस, विपिनचन्द्र गांगुली, अभिय भट्टाचार्य सरीखे क्रान्तिकारियों से निकट का संपक्र रहा और विप्लवी समिति के सदस्य होने के नाते ही उक्त दोनों बम-केसों में पोद्दार जी अनथक दौड़-धूप में संलग्न रहे, क्योंकि यह उनका दायित्व ही था। इस प्रकार पोद्दार जी को गिरफ्तार कर पहले अलीपुर जेल भेजा गया फिर उन्हें शिमलापाल (बांकुडा) में भारत रक्षा अधिनियम के अन्तर्गत नजरबन्द कर दिया गया।

- पं. बचनेश त्रिपाठी, त्रिपाठी क्लीनिक, सण्डीला (हरेदोई)

राष्ट्रभक्त सेठ जमनालाल बजाज

जिस प्रकार महाराणा प्रताप एक बार अपना सब कुछ राष्ट्र अर्पण के बाद असफल हो कर जंगल में जाकर चिंतामग्न थे। उस समय वैश्य कुलभूषण भामाशाह ने अपनी समस्त अर्जित पूंजी महाराणा के चरणों में राष्ट्रहित हेतु

अर्पण कर दी थी। उसी प्रकार 20वीं सदी में भी राष्ट्र पिता महात्मा गांधी की राष्ट्रहित मांग पर देश के महान सपूत अग्रकुल भूषण व त्याग मूर्ति सेठ जमनालाल बजाज ने भामाशाह का अनुकरण कर बापू के चरणों में अपना धन ही नहीं बल्कि तन-मन भी राष्ट्र अर्पण कर दिया था। ऐसे त्यागी महापुरूष के जन्म का गौरव राजस्थान के काशी नामक ग्राम में एक अग्रवाल परिवार को मिला जहां बालक जमनालाल बजाज ने 4 नवम्बर 1889 को जन्म लिया।

महान् त्यागी सेठ जमनालाल वर्धा के सेठ बच्छराज जी की गोद चले गए। लेकिन जमनालाल जी के साहसी व निर्भीक स्वभाव के कारण सेठ जी परेशान होकर जमनालाल का अपमान भरे शब्दों में निरादर भी कर दिया करते थे और एक दिन क्रोध के वशीभूत सेठ जी ने उत्तराधिकार से भी वंचित होने की धमकी दे दी, फिर क्या था जमनालाल जी ने इसी समय पत्र लिखकर सेठ जी की अतुल सम्पत्ति का त्याग कर दिया और उस सम्पत्ति पर सेठ वच्छराज के मरणोपरान्त भी स्वयं काबिज न हो कर ट्रस्ट कायम कर दिया और आज भी राष्ट्र सेवा में वह ट्रस्ट अग्रणी है।

सेठ जमनालाल बजाज की शिक्षा सीमित थी लेकिन महापुरूषों के सत्संग से ज्ञान अपरिमित था। अपने राष्ट्रभाषा, गौ सेवा व हरिजनों उद्धार में अग्रणीय पंक्ति में रहकर तन-मन-धन से सेवा की है। आपके दान का श्रीगणेश लोक मान्य तिलक के पत्र से प्रारम्भ होकर देश में चहुं ओर फैला। ऐसा कौन सा सेवा क्षेत्र रहा होगा जहां सेठ जी का वरद हस्त दान के लिए नहीं बढ़ा हो।

आपका राजनैतिक जीवन लोक मान्य तिलक से प्रभावित होकर सन् 1915 में पूज्य बापू के सम्पक्र में आकर फला-फूला और यहां तक हुआ कि पूज्य बापू को साबरमती के आश्रम में लाकर वर्धा में सेवाग्राम आश्रम स्थापित कराया और एक दिन वर्धा भारत की राष्ट्रीय राजधानी बनकर चमकने लगा। ऐसा कौनसा नरम दलीय या

गरम दलीय नेता या प्रमुख कार्यकर्त्ता होगा, जिसने वर्धा आकर सेठ जी का आतिथ्य स्वीकार न किया हो। जमनालाल जी ने भी नित्य-क्रम में पूज्य बापू के बताए नियम व वृत्त का अक्षरशः पालन करके ही बापू के पांचवे पुत्र बनने का अधिकार भी यहीं प्राप्त किया था।

बापू के सम्पर्क में आने के बाद राजसी पोशाक, राज सी ठाठ-बाट तथा उससे लगे अंग्रेजी गुलामी के प्रतीक ''राय बहादुरी'' का खिताब व आनरेरी मजिस्ट्रेटी को लात मारकर स्वयं हाथ के कते बुने खद्दर को धारण करके सादगी का जीवन बिताया और राष्ट्र के प्रत्येक आंदोलन में भाग लेकर तृतीय श्रेणी तक की जेल यात्रा में यातनापूर्ण सजाएं भुगती है।

सन् 1920 में नागपुर अधिवेशन के आप स्वागताध्यक्ष सर्व सम्मत्ति से चुने गऐ और आगे चलकर कांग्रेस महा-समिति के आजीवन कोषाध्यक्ष पद पर रह राष्ट्र के धन की सुरक्षा ही नहीं करते रहे बल्कि कांग्रेस को भी कभी पैसे का अभाव खटकने नहीं देते थे। राजनीति में अग्रणी रह कर भी आप रचनात्मक कार्य को ही प्रमुखता देते रहे हैं। आपने हमेशा बापू के रचनात्मक कार्यों को अपने कार्य का प्रमुख अंग बनाया था।

27 मार्च 1937 को हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का मद्रास में होना और वह भी आपके सभापतित्व में होना एक महान् आश्चर्य जनक घटना थी। आपने दक्षिण में महान् नेता राजा जी के सहयोग से घूम-घूम कर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपना तन-मन व धन लगाकर पूर्ण योगदान दिया।

गांधी जी की प्रेरणा से गौ सेवा का कार्य हाथ में लिया। अपने घर में गौशाला का निर्माण किया जिसका नाम गौपुरी रखा। वहीं अपने रहने के लिए एक कुटी बनवाई। आपने गौ सेवा को नई दिशा दी थी। आपने विशुद्ध व्यापार हेतु भी गौ सेवा का अवसर प्रदान कराया।

आपने हरिजनोद्धार में भी काफी कार्य किया था। देश भर में सेठ जी का वर्धा ही में श्री लक्ष्मी नारायण जी का मन्दिर पहला मन्दिर है जहां हरिजन प्रवेश सर्व प्रथम खोला गया था।

सेठ जी राष्ट्र सेवा के साथ समाज सेवा में भी अग्रणी रहे हैं। आपकी प्रेरणा से ही मारवाड़ी विद्यालय व छात्रावास की स्थापना हुई और आपके सद्प्रयासों से सेठ गोविन्द राय सेकसरिया द्वारा वर्धा, नागपुर व जबलपुर में सेकसरिया वाणिज्य कॉलेज स्थापित किए गए। आपके ही अथक प्रयत्नों का फल था कि 1918 में वर्धा में अ.भा. मारवाड़ी अग्रवाल महा सम्मेलन तथा जातीय कोष की स्थापना हुई और शिक्षा प्रसार के

****

लिए जोर दिया गया। आपके प्रयत्नों से ही समाज में नारी शिक्षा, पर्दा प्रथा का बहिष्कार, आभूषणों का परित्याग, फिजूल खर्ची व दहेज का विरोध प्रचलित हुआ। आपने अपने पुत्र व पुत्रियों की शादियां हमेशा सादगी व नियमानुसार करके समाज व देश के आगे अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

व्यापार में ईमानदारी का अनुकरणीय उदाहरण अगर किसी ने प्रस्तुत किया है तो वो हैं सेठ जमनालाल बजाज। एक-एक पैसे का हिसाब रखना, इन्कम टैक्स की चोरी से दूर रहना तथा व्यापार रत कार्यकर्त्ताओं के साथ ईमानदारी से तन-मन-धन से सहयोग देने में उनका अनुकरणीय उदाहरण रहा है। सेठ जी के जीवन में परिवारों का आपसी झगड़ा-निपटा कर मित्रता कराना, विद्यार्थियों, रोगियों को सहारा देना, युवक-युवतियों के विवाह कार्य मे सेठ जी के जीवन में परिवारों का आपसी झगड़ा-निपटा कर मित्रता कराना, विद्यार्थियों, रोगियों को सहारा देना, युवक-युवतियों के विवाह कार्य में सहयोग करना तथा कार्यकर्त्ताओं को संरक्षण देना प्रमुख काम रहा है। आपके हाथों से करोड़ों की सम्पत्ति राष्ट्रहित में अर्पण हुई। आपका निधन 11 फरवरी, 1942 को हो गया।

ऐसे कर्तव्यनिष्ठ, दानवीर, त्यागमूर्ति, देशभक्त समाज सेवी की आकस्मिक मृत्यु से राष्ट्र के प्रत्येक नेता तो शोकमग्न हुए ही लेकिन उससे बढ़कर हजारों लाखों की संख्या में वह असहाय जनता अपने मूक दाता की मृत्यु पर आंसू बहा कर रोती रही है कि अब उनका कौन रखवाला है। सेठ जमनालाल बजाज स्वयं ही राष्ट्रभक्त नहीं थे अपितु इन्होंने पूरे राष्ट्रभक्त परिवार की परम्परा छोड़ी है। आपकी धर्मपत्नी माता जानकी देवी, उनके बड़े पुत्र कमलनयन बजाज, कनिष्ठ पुत्र राधाकृष्ण बजाज, राहुल बजाज आदि उद्योग-निर्माण एवं राष्ट्र सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आपके परिवार द्वारा सेठ जमनालाल बजाज एवं माता जानकी देवी की स्मृति एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, जिनके लिए जमनालाल जी जीए और मरे, जमनालाल बजाज फाउंडेशन की स्थापना कर 1977 से प्रतिवर्ष निम्न पुरस्कार देने की व्यवस्था की है-

1. एक लाख रूपए का जमनालाल बजाज पुरस्कार- उस व्यक्ति या संस्था को, जिसने रचनात्मक तथा खादी ग्रामोद्योग, गौ सेवा, प्राकृतिक चिकित्सा, योग, मद्यनिषेध, हरिजन एवं जनजाति कल्याण, कुष्ठ निवारण, महिला एवं बालक कल्याण आदि के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है।
2. एक लाख रूपये का नगद दूसरा पुरस्कार उस वैज्ञानिक, वैज्ञानिकों,

****

संस्था/संस्थाओं को जो ग्रामीण क्षेत्र विशेषकर समाज के कमजोर अंगों के उत्थान हेतु विज्ञान एवं तकनीकी/प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अग्रणी शोध कार्य कर रहे हैं। उसमें ग्रामीण क्षेत्र में स्वच्छ जल की आपूर्ति, चूल्हों एवं स्वदेशी तकनीक से गृहों का निर्माण, सौर ऊर्जा का उपयोग कृषि में आधुनिक एवं रूढ़िगत साधनों का समन्वय, भूमि-सुधार आदि कृत्य सम्मिलित हैं।
3. 50-50 हजार रूपयों के प्रतिवर्ष दो पुरस्कार ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र में विशेष सामाजिक सेवा करने वाले संगठनों, औद्योगिक एवं व्यवसायिक घराने को। इसके अलावा प्रतिवर्ष एक लाख रुपए की राशि रचनात्मक कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए अनुदान रूप में व्यक्तियों/संस्थाओं को दी जाती है। भारत के बाहर गांधीवादी मूल्यों के प्रचार-प्रसार के लिए जमनालाल बजाज अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कार भी प्रारम्भ किया गया है।

4 नवम्बर, 1990 को आपके जीवन के 100 वर्ष पूर्ण हुए हैं, इस अवसर पर भारत सरकार ने उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए श्री चिमनभाई पटेल की अध्यक्षता में सेठ जमनालाल बजाज जन्म शताब्दी समिति का गठन किया था, जिसने उनकी स्मृति में विविध कार्यक्रमों का राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन किया। इस अवसर पर भारत सरकार ने उनकी पुण्य स्मृति में दूसरा डाक टिकट जारी किया। यह सम्पूर्ण अग्रवाल समाज के लिए अत्यंत ही गौरव का विषय है।

सेठ जमनालाल बजाज की मृत्यु से आजादी का एक महान् दीवाना राष्ट्रभक्त चला गया। गांधीजी उनकी रूग्णता का समाचार सुन उनके स्वास्थ्य का हाल-चाल पूछने स्वयं वर्धा पहुंचे किन्तु उनके पहुंचने से कुछ ही समय पूर्व ही इस देदीप्यमान नक्षत्र का अस्त हो चुका था। गांधीजी ने उनके परिवार को सान्त्वना दिलाई। श्रीमती जानकीदेवी जी उनके साथ सती होने के लिए व्यग्र थी, उन्हें इस कार्य से रोक कर समाज-सेवा में शेष जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा-''जमनालाल जी मेरे पांचवें पुत्र थे।'' इस स्वेच्छा से गोद आए पुत्र ने कितना कुछ किया, इसका पता बहुत कम लोगों को होगा। मैं कह सकता हूं कि इससे पहले किसी मनुष्य को ऐसा पुत्र नसीब नहीं हुआ।

सेठ जमनालाल बजाज ने बिना किसी संकोच के अपने-आपको और सर्वस्व को मुझे समर्पित कर दिया था। मेरा शायद ही कोई ऐसा काम होगा, जिसमें मुझे उनका हार्दिक सहयोग न मिला हो और जो अत्यन्त कीमती साबित न हुआ हो।

उन्होंने मेरे कामों को पूरी तरह अपना लिया था। यहां तक कि मुझे कुछ करना

ही नहीं पड़ता था। ज्योंहि मैं किसी नए काम को शुरू करता, वह उसका बोझ स्वयं उठा लेते थे। इस तरह मुझे निश्चिंत कर देना मानो उनका जीवन कार्य ही बन गया था। मेरी इच्छाओं की पूर्ति के लिए मैं आसानी से उन पर भरोसा कर सकता था, कारण कि जितना उन्होंने मेरे काम को अपना लिया था, उतना शायद ही कोई अपना पाया होगा।

उनकी बुद्धि कुशाग्र थी। वह सेठ थे। उन्होंने अपनी पर्याप्त संपत्ति मेरे हवाले कर दी थी। वह मेरे समय और मेरे स्वास्थ्य के संरक्षक बन गए और यह सब उन्होंने सार्वजनिक हित की खातिर किया।

वह बुद्धिशाली भी थे और व्यवहार कुशल भी। वह अपनी जगह पर अद्वितीय थे। वह जिस काम को हाथ में लेते थे जी-जान से जुट जाते थे।
खादी के काम में उन्हें दिलचस्पी मुझसे कम न थी। खादी के लिए जितना समय मैंने दिया उतना ही उन्होंने भी दिया। इस काम के पीछे उन्होंने मुझसे कम बुद्धि खर्च नहीं की थी। थोड़े में यह कह लीजिए कि अगर मैने खादी का मंत्र दिया तो जमनालाल जी ने उसको मूर्त रूप दिया।

सेठ जमनालाल जी में छुआछात को हटाने, सांप्रदायिकता से दूर रहने और सब धर्मों के प्रति समान आदरभाव रखने की जो उत्कृष्ट वृत्ति है, वह उन्हें मुझसे नहीं मिली है। कोई भी व्यक्ति अपने विश्वास दूसरों को नहीं सौंप सकता। हां यह हो सकता है कि जो विश्वास दूसरों में पहले से मौजूद हो उन्हें प्रकट करने में कोई सहायक हो सके। किन्तु सेठ जमनालाल जी के उदाहरण में तो मैं श्रेय भी नहीं ले सकता कि मैंने उन्हें इन विश्वासों को प्राप्त करने या उन्हें प्रदर्शित करने में सहायता पहुंचायी है। मेरे सम्पक्र में अपने से बहुत पहले ही उनके विश्वास बन चुके थे और उन्होंने उनका अनुकरण करना शुरू कर दिया था। उनके इन आंतरिक विश्वासों की बदौलत ही हम एक-दूसरे के सम्पक्र में आए और हमारा इतने सालों तक घनिष्ठ सहयोग के साथ काम करना संभव हुआ।

जिसको राजकाज कहते हैं वह न मेरा शौक था न उनका। वह उसमें पड़े क्योंकि मैं उसमें था। लेकिन मेरा सच्चा राजकाज तो था रचनात्मक कार्य और उनका भी राजकाज यही था।

वह एक ऐसी साधना में लगे हुए थे जो कामकाजी आदमी के लिए विरल है। विचार-संयम उनकी एक बड़ी साधना थी। वह सदा ही अपने को तस्कर विचारों से बचाने की कोशिश में रहते थे। जब कभी मैंने यह लिखा है कि धनवानों को सार्वजनिक हित के लिए अपनी सम्पत्ति का ट्रस्टी या संरक्षक बन जाना चाहिए, तो मेरे दिमाग में

सेठ जमनालाल जी का उदाहरण मुख्य रूप से रहा है।

अगर उनका ट्रस्टीपन आदर्श तक नहीं पहुंच पाया तो उसमें कसूर उनका नहीं था। मैने जानबूझकर उन्हें रोका। मैं यह नहीं चाहता था कि वह अपने उत्साह या आवेश में कोई ऐसा कदम उठाएं, जिसके लिए ठंडे दिमाग से सोचने पर उन्हें अफसोस करना पड़े। उनकी सादगी खुद उनकी ही विशेषता थी।

जहां तक मुझे मालूम है मैं दावे से कह सकता हूं कि उन्होंने अनीति से एक पाई भी नहीं कमाई और जो कुछ कमाया उसे उन्होंने जनता जनार्दन के हित में ही खर्च किया। जब से वह पुत्र बने तब से वह अपनी समस्त प्रवृतियों की चर्चा मुझसे करने लगे थे। अंत में जब उन्होंने गौ-सेवा के लिए फकीर बनने का निश्चय किया तो वह मेरे साथ पूरी तरह सलाह-मश्विरा करके ही किया।

त्याग की दृष्टि से उनका अंतिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा। देश के पशुधन की रक्षा का कार्य उन्होंने अपने लिए चुना था और गाय को उसका प्रतीक माना था। वह इस काम में इतनी एकाग्रता और लगन के साथ जुट गए थे कि जिसकी कोई मिसाल नहीं।

होना यह चाहिए था कि मैं उनके लिए अपनी विरासत छोड़कर जाता, पर इसके बदले में वह अपनी विरासत मेरे लिए छोड़ गए। यह मैं कैसे कहूं कि उनके जाने से मुझे दुःख नहीं हुआ, दुःख होना तो स्वाभाविक था। क्योंकि मेरे लिए तो वही मेरी कामधेनू थे। लेकिन जब उनके कामों को याद करता हूं और हमारे लिए जो सन्देश छोड़ गए है उनका विचार करता हूं तो अपना दुख भूल जाता हूं। गांधी जी के श्री जमनालाल बजाज के प्रति व्यक्त उद्‌गारों से उनके महान जीवन की एक झलक सरलता से प्राप्त की जा सकती है। सभी अग्रवाल बंधुओं एवं वैश्य संस्थाओं का कर्त्तव्य है कि वे इस महापुरूष के जन्म दिवस को सार्वजनिक रूप से बनाकर समाज की गौरवशाली परंपराओं के विस्तारक को नमन करें।

- डा. चम्पालाल गुप्त

भारत की भूमि कर व्यवस्था के जनक

अग्रकुल शिरोमणि राजा टोडरमल

हरियाणा में नारनौल नामक एक कस्बा है। बादशाह अकबर के समय यहां एक प्रतिष्ठित अग्रवाल परिवार बसता था। इस परिवार की स्वामिनी के भाई अकबर दरबार के प्रमुख अधिकारियों में से थे। जब भी वह भाई किसी निजी अथवा राजकीय कार्यवश उधर से होकर निकलते, वे अपनी बहिन के पास अवश्य ठहरते।

उन दिनों छोटी से अवस्था में ही बच्चों के विवाह सम्बंध तय कर दिये जाते थे। उक्त परिवार में सन्तान के नाम पर एक मात्र लड़का था, जिसका विवाह सम्बंध समीप के एक सुप्रसिद्ध नगर सेठ की कन्या के साथ निश्चित हुआ। दुर्देववश व विवाह-सम्बंध तय होने के कुछ ही समय पश्चात् लड़के के पिता की मृत्यु हो गई। मुनीमों ने बेईमानी से सेठजी का सारा धन हड़प लिया। उनका सारा व्यापार छिन्न-भिन्न हो गया। परिवार में आर्थिक विपन्नता आ गयी। घर में केवल दो ही प्राणी रह गये- सेठानी जी और उनका एक मात्र इकलौता पुत्र।

सूचना कन्या परिवार तक भी पहुंची। उन्होंने अनुभव किया, अब इस परिवार में कन्या का विवाह करना उनकी शोभा के अनुरूप न होगा किन्तु सम्बंध विच्छेद करना भी सरल न था। अतः लड़की वालों ने सम्बंध तोड़ने के लिए एक मीठा बहाना बनाया। उन्होंने सुपारियों की एक थैली नारनौल भेजी और लिखा कि विवाह का लग्न फाल्गुन मास का है। कृपया आप सुपारियों की संख्या जितने बाराती प्रतिष्ठित परिवारों के ही लाइयेगा, जिसमें दोनों परिवारों की शान है। सेठानी जी पत्र को पाकर सब बातें समझ गई। उस समय यातायात के नवीन वैज्ञानिक साधन न होने से बड़ी बारातों को ले जाना कठिन और व्यय साध्य कार्य था। सम्पन्न परिवारों की बारातें हाथियों, घोड़ों, रथों, पालकियों, ऊंटों आदि पर जाती थी। अतः बारातियों के साथ इन सबके भोजन-चारे की भी व्यवस्था करनी पड़ती थी। सेठानी के लिए इस प्रकार की व्यवस्था करना सम्भव न था। सगे-सम्बन्धियों, सबसे मन्त्रणा की किन्तु कोई परिणाम न निकला।

संयोगवंश भाई का पंजाब जाते हुए सेठानी जी के यहां ठहरना हुआ। उदासी का कारण पूछने और सान्त्वना दिये जाने पर सेठानी जी ने अपने मन की पीड़ा भाई को

कह सुनाई। भाई बड़े ही सहृदय थे। उन्होंने बारात की व्यवस्था का सारा जिम्मा अपने सिर ओट लिया। सेठानी ने राहत की सांस ली। अब बहिन की आन-शान भाई की आन-शान बन गई। उन्होंने मूंगों से भरी एक थाली समधी के यहां भिजवाई और कहलाया कि फाल्गुन का विवाह स्वीकार है। दोनों परिवारों की शान को देखते हुए थाली में जितने मूंग हैं, उतने बाराती आयेंगे। कृपया आप तैयारी रखें। कन्या पक्ष वालों ने इसे मजाक समझा। उन्होंने सोचा कि सेठ जी की मृत्यु से सेठानी का दिमाग खराब हो गया लगता है। अन्यथा इतने बाराती कोई ला सकता है?उन्होंने हल्के भाव से संदेशा भिजवा दिया कि स्वीकार है। हम आपके स्वागत की प्रतीक्षा करेंगे।

इधर भाई ने पूरे जोश के साथ विवाह की तैयारी प्रारम्भ कर दी। सम्राट से कहकर पर्याप्त संख्या में बारात के लिए हाथियों, घोड़ों को प्राप्त किया। सभी मुख्य जागीरदारों, बजीरों, राजा-महाराजाओं को उन्होंने बारात में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। पशुओं के चारे-पानी एवं बारातियों के लिये भोजन की व्यवस्था हेतु सैकड़ों व्यक्तियों की मार्ग में नियुक्ति की। बड़ी धूमधाम से बारात का यह लवाजमा नारनौल पहुंचा। बहिन ने अगवानी की। भाई साहब ने भात भरा। भात में एक से एक कीमती द्रव्य, हीरे, जवाहरात, वस्त्राभूषण आदि दिये। भात क्या था, ऐसा लगता था, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण नरसी भगत का भात भरने आ गये हैं। जिसने इस भात को देखा विस्मित हुए बिना नहीं रहा।

निश्चित समय पर बारातियों का यह दल समधि की ओर रवाना हुआ। बारात को देखकर ऐसा लगता था कि किसी बड़े राजा की सवारी निकल रही है। हाथी, घोड़ों, रथों की मिलों तक कतार लगी थी। बारातियों का राजसी ठाट-बाट देखते ही बनता था। बारात के साथ महावतों, घुड़सवारों, नृतकियों, बाजे बजाने वालों आदि का विशाल दल चल रहा था। बारात में मानसिंह, बीरबल, रहीम खानखाना जैसे बड़े-बड़े ख्यातिनामा पुरूष सम्मिलित थे। हाथियों, घोड़ों के पगों से उठने वाली धूल दूर-दूर तक बारात की भव्यता का संदेश पहुंचा रही थी। लोगों ने कहा- ऐसी बारात इससे पहले न कभी देखी, न सुनी।

बारात की खबर कन्या पक्ष वालों के पास भी पहुंची। पहले तो कानों को विश्वास न हुआ किन्तु जब सत्यता मामूल हुई तो लड़की के पिता के छक्के छूट गये, यद्यपि नगर सेठ प्रतिष्ठा सम्पन्न पुरूष थे, किन्तु इतने सारे बारातियों की व्यवस्था करना सम्भव न था। लड़की का पिता सब बात समझ गया था किन्तु मान रक्षा का कोई उपाय सूझ नहीं रहा था।

****

आखिर कन्या पक्ष के लोग आपसी मन्त्रणा कर बारात की अगुवाई के लिए पहुंचे। लड़की के पिता ने समधि के चरणों में अपनी पगड़ी रख दी और अपनी करनी पर पश्चाताप करते हुए फूट-फूट कर रोने लगा। कहा कि 'अब तो लाज आपके हाथ में है। मैं सबकी नजर में गिर जाऊंगा।' भाई का हृदय भी समधि की अनुनय-विनय को देख द्रवित हो गया। उन्होंने समधि को उठाया, गले से लगाया सान्त्वना दी और कहा- 'हमारे पास सब तरह की व्यवस्था है, आप निश्चिंत रहें। आपकी लाज हमारी लाज है।' लड़की के पिता ने राहत का अनुभव किया।

बारात पधारी! खूब सेवा-सुश्रूषा हुई। सारा वातावरण आनन्द और उल्लास से उमंगित हो उठा। दोनों सम्बन्धियों के प्रेम को देख मन भरता था। विवाह के सब नेग-चार भली-भांति सम्पन्न हुए। कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को भावभीनी विदाई दी गई। बारात पूरे जोश और उत्साह के साथ नारनौल पहुंची। बहिन ने भाई को भीगी और उल्लास भरे नेत्रों से मौन साधुवाद दिया। इस साधुवाद को नीची निगाह से स्वीकार किया असहाय बहिन के भाई राजा टोडरमल ने। महिलाओं ने उस समय द्वारचार के अवसर पर गीत गाया-

'ऐतो जीत्या जी, जीत्या म्हांरा टोडरमल वीर,
केशरियों बनड़ों जीत्यों म्हारे, वीरें जी के पाण।

तभी से यह गीत द्वार चार के अवसर पर गाये जाने का रिवाज अग्रवाल समाज में चला आ रहा है। आज भी इस समाज की महिलाएं द्वारचार के अवसर पर सर्वप्रथम इसी गीत को गाती है।

अग्रवाल समुदाय के गौरव, अकबर के नवरत्नों में विख्यात टोडरमल को कौन नहीं जानता?वे अपने समय के अद्वितीय वीर, महान योद्धा, कुशल प्रशासक, निपुण व्यापारी और चरित्र सम्पन्न, न्यायप्रिय अधिकारी थे। इतिहास के अन्य महापुरूषों की भांति टोडरमल की जाति से सम्बंध में भी तरह-तरह की भ्रातियां उत्पन्न हो गई हैं और उनका सम्बंध खत्री आदि समुदायों के साथ जोड़ा जाता है, किन्तु मारवाड़ी अग्रवालों में शताब्दियों से विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले उपरोक्त गीत से ऐसा प्रतीत होता है कि वे अग्रवाल थे। उनका जन्म अलीगढ़ जिले के एक ग्राम में सुसम्पन्न अग्रवाल परिवार में श्री साहूपासा के यहां हुआ था और कतिपय अग्रवाल परिवारों की पीढ़ी में उनके नाम का समावेश इसी बात की पुष्टि करता है। यदि वे खत्री या अन्य समुदाय के होते तो केवल अग्रवाल परिवारों में ही इस गीत का प्रचलन न होता।

****

टोडरमल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

टोडरमल अकबर के नवरत्नों में से थे। वे अद्वितीय वीर, अनुपम साहसी, व्यवहार कुशल, बुद्धिमान व्यक्ति थे। उनमें कुशल प्रशासक एवं सेनापति दोनों के गुणों का सुन्दर समन्वय था। इसीलिये उन्हें प्रधान सेनापति और बजीरे आजम जैसे विशिष्ट पद प्राप्त हुए। इनसे भी बढ़कर वित्तीय एवं भूमि सम्बंधी मामलों में उनकी पैठ अत्यन्त गहरी थी और उन्होंने मालगुजारी, भूमि की माप-जोख, लगान आदि के बारे में जिन नियमों का निर्माण किया, उनकी छाप आज 400 वर्ष बाद भी बनी हुई है और उनका महत्व अक्षुण है। उन्होंने अपने जीवन का प्रारम्भ एक सामान्य व्यक्ति से प्रारम्भ किया किन्तु अपनी सूझ-बूझ, प्रतिभा और कौशल से अकबर के दरबार में पहुंच गये। श्री राहुल सांस्कृत्यायन ने उनकी इस उन्नति के कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा है- 'वह हर एक चीज को बहुत सोच समझ कर करते थे। नियम की पाबन्दी और काम की सफाई तो उनके स्वभाव में थी। जो भी सीखने लायक बात होती, उसके पीछे पड़ जाते। काम काम को सिखाता है और टोडरमल हरेक काम को खूब अच्छी तरह से करना चाहते थे। सरकारी कागज-पत्रों की जानकारी में उनका ज्ञान अपने सहकारियों से जल्दी ही आगे बढ़ गया। बड़ी सल्तनत के अभिलेखों और कागज-पत्रों का क्या ठिकाना था?लेकिन उस जमाने में किसी चीज को तुरन्त जाकर बादशाह के सामने रख देना टोडरमल के बांये हाथ का खेल था।

अकबर उनकी कलम और प्रशासनिक दक्षता से प्रभावित ही, किन्तु वह उनके युद्ध कौशल के भी कायल थे। इसीलिये उन्होंने विभिन्न युद्धों में टोडरमल को सेना के प्रबंध और सेनापति का दायित्व सौंपा और टोडरमल ने उनमें सफलता प्राप्त कर अपनी असाधारण दक्षता का परिचय दिया। चित्तौड़, रणथम्भौर, सूरत, लश्कर, बंगाल, स्वात आदि विभिन्न युद्धों में उनके तलवार के जौहर और अनुपम युद्ध कौशल का सुन्दर परिचय देखने को मिला। उन्होंने सेना, तोपखाने, हाथियों की पल्टन आदि को पुनः संगठित कर उसे नवीन रूप दिया। इससे उन्हें पर्याप्त यश मिला। पटना पर विजय प्राप्त करने की खुशी में बादशाह की ओर से उन्हें झण्डा और नगाड़ा सम्मान स्वरूप प्रदान किया गया। बाद में उन्हें सल्तनत के दीवान का पद दिया गया। और वे 'वजारतकुल', 'वकालत मुस्तकिल' जैसे पदों को सुशोभित करते हुए सल्तनत के खजाना मंत्री एवं राजस्व मंत्री बनाये गये। विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार वे अकबर के सबसे योग्य जनरल थे। जिस समय उन्होंने राज्य का अर्थ विभाग सम्भाला, उस समय अर्थव्यवस्था अच्छी न थी। सरकारी अधिकारी, मुल्ला-मौलवी तरह-तरह से राज्य के कोष का दुरूपयोग करते

****

हुए उसे लूट रहे थे। भ्रष्टाचार का बोलबाला था। किन्तु टोडरमल ने पद पर रहते हुए भी उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। उन्होंने अपनी प्रतिभा से राज्य की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ और स्थायी आधार प्रदान किया। उन स्त्रोतों को रोका, जिनसे राज्य के धन का दुरूपयोग होता था। उन उपायों को अपनाया, जिनसे राज्य कोष निरन्तर भरा रहे। उन्होंने भ्रष्ट अधिकारियों एवं मुल्ला-मौलवियों की भ्रष्ट गतिविधियों पर पाबन्दी लगा दी। मुद्रा व्यवस्था में सुधार किये, कार्यालयों में हिसाब किताब रखने के नियमों का निर्माण किया। घोड़ों के क्रय-विक्रय में होने वाली धांधली को रोकने के लिए उन्हें दागने का नियम बनाया। मालगुजारी की नई दरें निश्चित की और सम्पूर्ण राज्य को सूबों, गांवों, परगनों आदि में बांटकर लगान प्राप्ति की प्रभावी व्यवस्था की। भूमि की नाप-जोख प्रणाली का प्रचलन किया और भूमि नापने के लिए 60 गज की जरीब की व्यवस्था की। फसलों के अनुसार उनका लगान निश्चित किया और उनकी वसूली के लिये उपयुक्त अधिकारियों की व्यवस्था की। बंगाल और देश के विभिन्न भागों में जमीन जायदाद और मालगुजारी आदि के आज भी सुंदर प्रबंध दिखाई देते हैं, उनकी नींव डालने में टोडरमल का बहुत बड़ा हाथ था। इन सब उपायों से राज्य की अर्थव्यवस्था ने एक मोड़ लिया।

अकबर उनकी इस योजना से बहुत प्रसन्न थे, इसलिये अपने विश्वास के सभी उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों को उन्हें सौंपते संकोच न करते थे। चित्तौड़ के मुहासिरे में सुरंग को उड़ाने , सूरत में शत्रु की शक्ति की जांच करने, गुजरात का भू-कर बन्दोबस्त करने जैसे जिम्मेदारी के अनेक कार्य उन्हें सौंपे गये इससे अकबर के बहुत से अमीर मुल्ला, मौलवी उससे नाराज हो गये। उन्होंने बार-बार अकबर से मुसलमानों के विरूद्ध एक हिन्दू को तरहीज देने का विरोध किया किन्तु अकबर दबाव के आगे न झुका। उसने कहा- 'आप में से हर एक अपने कारोबार में हिन्दू मुंशी को रखते हो। अगर मैंने हिन्दू को रखा तो क्या बुरा है?'

टोडरमल वैश्य होने के नाते हिसाब-किताब के भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने व्यापार की गोपनीयता को बनाए रखने के लिए मुड़िया लिपि का आविष्कार किया। इसे एक प्रकार की संकेत लिपि कहा जा सकता है। व्यापार में समय की बचत और गोपनीयता का बड़ा महत्व है। मुड़िया लिपि में मात्रायें न होने से समय की बचत तो होती ही है, गोपनीयता भी बनी रहती है। इसे सही रूप में केवल लिखने वाला ही पढ़ सकता है। अतः आज भी अधिकांश मारवाड़ी व्यापारी अपने बही-खातों में इसी लिपि का प्रयोग करते हैं। कहा भी है-

****

देवनागरी अति कठिन, स्वर व्यंजन व्यवहार।
ताते, जग के हित सूगम, मुड़िया कियो प्रचार।।

टोडरमल ने मुड़िया लिपि के साथ बही खातों के नियमों का निर्माण भी किया। अनेक ऐसे छन्दों की रचना की, जिससे हिसाब फैलाने में बड़ी सहूलियत रहती है। लेन-देन और जमा खर्च के नियम बनाये, हुण्डी-चिट्ठी कैसे, किस अवस्था में लिखनी चाहिए, कौन सा व्यापार करना लाभप्रद है और कौनसा हानिकर, भिन्न-भिन्न वस्तुओं का व्यापार करने वाले व्यापारियों को किन-किन बातों का ध्यान रखने से लाभ हो सकता है?किन-किन वस्तुओं को किस समय और किन परिस्थितियों में खरीदना-बेचना चाहिये, सर्राफों के क्या लक्षण हैं?आदि अनेक व्यापारोपयोगी बातों को उन्होंने अपने ठोस ज्ञान और अनुभवों के आधार पर छन्दों में लिपिबद्ध किया। उन्होंने बही-खाते रखने की सरल पद्धति का प्रचार किया। विदेशी पद्धति की तरह उनमें जरा भी पेचीदगी नहीं है। उनमें रोकड़, नकल, खाता और जमा खर्च केवल इन चार बहियों से प्रायः सारा कार्य चल जाता है। इन बहियों का हिसाब इतना सही होता है कि एक पाई का फक्र नहीं पड़ता और थोड़े से समय में ही व्यापार के लेन-देन, हानि-लाभ आदि के सम्बंध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यहां हम श्री टोडरमल के कुछ ऐसे ही छन्दों को उद्धृत कर रहे हैं, जिनसे उनके व्यापक ज्ञान का अनुभव लगाया जा सकता है :-

हुण्डी लिखे न हाथ से, जमा न रखे भूल।
लेय ब्याज देवे नहीं, सोई सराफी मूल।।
जग-सराफ ताको कहे, जमा समय पर देय।
व्यापारी सो जानियो, समय पै मुद्दत लेय।।

साहूकार के लक्षण-

आधा ऊपर आधा तरे, आधा देय साह के गरे।
आधे में आधा निस्तरे, जुग टर जाय साह नहीं टरे।।

बही खाता लिखने की रीति-

बाम जमा, दक्षिण खर्च, सिर पेटा पर पेड।
ऊपर नाम धनी लिखै, हस्ते पुनरौ देठ।।

व्यापार की उपुयक्तता-

प्रथम जवाहिर धातु पुनि, कपड़ा गल्ला धीर।
मूल पात फल रस, धरे, धीर का धीर।।
दाना खाय लीद जो करे, ऐसा बनज साहू न करै।

घास खाय दूध बहु देय, ऐसा बनज साह कर लेय।।

फुटकर-

प्रथम बनारस, आगरा, दिल्ली और गुजरात।
अगर और अजमेर से, सिखें सराफी बात।।
मकां, अदालत, जामिनी, पर नारी को साथ।
यह चारों चौपट करैं, रहे दूर तजि आस।।

यद्यपि आजकल व्यापार की पद्धति और स्वरूप में बड़ा परिवर्तन आ गया है, फिर भी इनकी महत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि टोडरमल बड़े ही प्रतिभा सम्पन्न, व्यवहार कुशल, उन्नतचेता चरित्र सम्पन्न व्यक्ति थे। उनके ऊपर लक्ष्मी और सम्मान की बौछार होती रही है। किन्तु अभिमान उन्हें छू तक न गया। उन्होंने बंगाल, गुजरा, पश्चिमोत्तर सीमान्त आदि प्रदेशों के युद्धों में अपने शौर्य को प्रकट किया, किन्तु कभी इच्छा न की कि उन्हें मुख्य सेनापति बनाया जाए। युद्ध करना कठिन है किन्तु उससे भी कठिन कार्य है सेना की नियमित रूप से निश्चित समय पर रसद आदि आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति और टोडरमल इस कार्य में बड़े ही दक्ष थे। इतना होने पर भी वे आदर्श हिन्दू थे और अपने धर्म और विचार के प्रति बड़े कट्टर थे। उनका ध्यान हमेशा पूजापाठ और उपासना में लगा रहता था। अकबर द्वारा प्रवर्तित 'दीने इलाही' धर्म का बहुत अधिक प्रचार होने पर भी उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह पूजापाठ में किसी प्रकार का विघ्न नहीं आने देते थे।

जब वे वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तो उनकी इच्छा राजकाज को छोड़ गंगा के किनारे रहने और शेष जीवन भागवत भक्ति में बिताने की हुई। उन्होंने बादशाह से इसके लिए प्रार्थना की। बादशाह ने उन्हें खुश करने के लिए पहले तो अपने स्वीकृति दे दी, किन्तु शीघ्र ही दूसरा फरमान भेज दिया कि भगवान के बंदों की सेवा, ईश्वर-भजन से कम नहीं है। अतः उसे मत त्यागो। इससे उनकी गंगातट पर वास की इच्छा पूरी न हो सकी। वे जीवन भर ईश्वर के बंदों की सेवा करते हुए अन्त में उसी के धाम चले गये। टोडरमल की मृत्यु हुए लगभग चार शताब्दियां व्यतीत होने को हैं, किन्तु उनकी ख्याति और कार्यों की स्मृति आज भी जनमानस में ज्यों की त्यों बनी हुई है।

- डॉ. चम्पालाल गुप्त

महान क्रांतिकारी मास्टर अमीरचन्द

सामान्यता अग्र वैश्य समाज की गणना शांतिप्रिय समाजों में ही है और यह माना जाता है कि इस समाज के लोग व्यवसाय प्रिय होने के कारण राज्य के प्रति विद्रोह से दूर रहते हैं, किंतु इस जाति का इतिहास कुछ दूसरा भी है। इस समाज के लोगों ने न केवल बड़े-बड़े गुप्त साम्राज्य, वर्द्धनवंश आदि राज्यों का संचालन किया है, अपितु आवश्यकता पड़ने पर हाथ में तलवार धारण कर, सर पर कफन बांध बड़ी से बड़ी आसुरी शक्ति से लोहा लेने में भी संकोच नहीं किया है और पूरा भारत का इतिहास इन क्रांतिकारी अग्रवीरों की साहसी एवं रोमांचक गाथाओं से भरा पड़ा है।

एक ऐसे ही महान् क्रान्तिकारी हुए जिसने अपने जीवन की परवाह न करके शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को हिला दिया। किन्तु खेद है, उपेक्षा के कारण आज यह महान वीर स्मृति की धुधली रेखाओं से लुप्त हो चुका है। इस महान क्रांतिकारी योद्धा का नाम था मास्टर अमीरचंद। इनका जन्म 1859 में एक अग्रवाल परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम श्री हुक्मचंद था। शिक्षा-दिक्षा दिल्ली में ही हुई और अपने जीवन का प्रारंभ अध्यापन से किया और मिशन स्कूल में अध्यापक बन गए। इनकी रूचि प्रारंभ से ही सामाजिक कार्यों में थी और आपने विधवा विवाह, शिक्षा-प्रसार, अछूतोद्धार आदि कार्यों में भाग लेना शुरू कर दिया था। किंतु मानसिक रूप से वे अंग्रेज साम्राज्य एवं विदेशी दासता के कट्टर विरोधी थे। राष्ट्रभक्ति की प्रखर भावना उनकी रग-रग में बसी थी। इसलिए उन्होंने मिशन स्कूल के अध्यापक पद को त्याग शीघ्र ही चर्खेवालान, चावाड़ी बाजार, दिल्ली-6 में संस्कृत विद्यालय के प्रधानाध्यापक पद को ग्रहण कर लिया।मास्टर जी की गणना दिल्ली के उच्चकोटि के नेताओं में होती थी। वे सब प्रकार की सामाजिक एवं सार्वजनिक गतिविधियों में आगे रहे थे। देशभक्ति की भावना आपमें कूट-कूट कर भरी थी। आप पर स्वामी रामतीर्थ के विचारों का प्रभाव था। बाद में लाला लाजपतराय ने जब अपने क्रांतिकारी विचारों का प्रचार किया तो आप उनसे बड़े प्रभावित हुए और आप क्रांतिकारी आंदोलन में कूद पड़े। सन् 1902 के प्रारंभिक स्वाधीनता काल में लाला हरदयाल भारत में स्वतंत्रता की ज्योति जलाने चले तो

आप अपने दल का कार्य-भार मास्टर अमीरचंद को ही सौंप दिया।

1857 का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध सशस्त्र क्रांति का उद्घोष था। यद्यपि यह आंदोलन वांछित सफलता प्राप्त न कर सका किंतु यह भारत के महान देशभक्त स्वतंत्रता सेनानियों के दिलों में गहरे घाव छोड़ गया। विद्रोह की यह आग धीरे-धीरे सुलग रही थी उसे भभकने के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा थी।

इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास 1905 में हुआ, जबकि संपूर्ण भारत अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध बंग-भंग आंदोलन तथा स्वराज्य की मांग के अंकुर भी छिपे पड़े थे। पर इस आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण बात थी- वहां की सशस्त्र क्रांति, जिसने अंग्रेजों को मजबूर कर दिया कि वे बंगाल के विभाजन को रद्द कर दें। इसके साथ ही अंग्रेजों ने कलकत्ता को छोड़ दिल्ली में राजधानी बनाने का निश्चय किया, ताकि वे सुरक्षित रह सकें। इसके पीछे उनकी यह भावना थी कि शायद वे दिल्ली में रह कर बम के धमाकों तथा पिस्तौलों की गोलियों से बचे रहेंगे किंतु यह धारणा धूलिसात हो गई, जब दिल्ली में 1912 में लार्ड वायसराय हार्डिंग पर बम फेंका गया और उसने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की चूलें हिला कर रख दी।

इतिहास की इस महान क्रांतिकारी घटना के नायक थे- अग्रगौरव मास्टर अमीरचंद, जिन्होंने इस संपूर्ण योजना को बड़ी सफलता के साथ क्रियान्वित किया और अंत में अपने ही घर के भेदिए से मृत्यु के फंदे पर हंसते-हंसते झूल गए। मास्टर जी प्रारंभ से ही क्रांतिकारी विचारों के थे। उनका पंजाब के क्रांतिकारी आंदोलन से भी गहरा संबंध रहा। सरदार अजीतसिंह के क्रांतिकारी आंदोलन से भी उनका गहरा संबंध रहा। सरदार अजीतसिंह और सूफी अम्बाप्रसाद ने 1907 में जिस क्रांतिकारी आंदोलन की नींव पंजाब में रखी, उसमें मास्टर जी का भी सक्रिय योगदान रहा। दिल्ली में सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल उनके ही छात्र थे, जो 1908 में इंग्लैंड में अपनी शिक्षा को बीच में ही छोड़ दिल्ली लौट आए थे और मास्टर जी के क्रांतिकारी आंदोलन के प्रभाव से दिल्ली में भी एक क्रांतिकारी संगठन की स्थापना हो चुकी थी और मास्टर अमीरचंद के शिष्य उनके नेतृत्व में एक संगठन की गतिविधियों को पूरे जोश के साथ संचालित कर रहे थे। उनका लाहौर के विप्लव दल और उसके क्रांतिकारियों-रासविहारी, बालमुकुंद आदि से गहरा संपक्र था। मास्टर अमीरचंद की

ख्याति उस समय चरम सीमा पर थी। शिक्षा के क्षेत्र में तो उनका नाम था ही, उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी। दिल्ली के दरीबां कला में उनका मकान 'प्रेमधाम' काफी सुंदर और विशाल था तथा वह अतिथियों एवं क्रांतिकारियों के लिए सदा खुला रहता था। सन् 1909 में लाला हरदयाल के भारत से चले जाने के बाद तो यह जैसे क्रांतिकारियों का केंद्र ही बन गया था। रासबिहारी बोस, अवधविहारी चटर्जी, बालमुकुंद बिलायत में बैरिस्ट्री करने चले थे तो दल की बागडोर मास्टर अमीरचंद ने ही संभाली।

इस क्रांतिकारी दल ने जो महान ऐतिहासिक कार्य किया, वह था- 26 दिसंबर 1912 को लार्ड हार्डिंग वायसराय पर बम फेंकना। लार्ड हार्डिंग उस दिन 11 बजे दिल्ली रेलवे स्टेशन पर ट्रेन से पहुंचे थे और एक जुलूस की शक्ल में उनका कारवां किंग्स गार्डन, टाउन हाल, चांदनी चौक के रास्ते लाल किला के लाहौरी दरबार के नौबत ,खाने से दीवाने आम दरबार की और कूच कर रहा था। अचानक चांदनी चौक के पास खड़ा 11.45 बजे उनके हाथी के हौदे पर एक बम फटा। बम बड़े तेज धमाके से फटा और देखते-देखते लार्ड हार्डिंग के पीछे खड़ा बलरामपुर महाराज के फीलर खाने का जमादार महावीर हौदे पर ही टुकड़े-टुकड़े हो गया। दूसरा व्यक्ति जो उसके समीप ही खड़ा था, बुरी तरह घायल हो गया, किंतु लार्ड हार्डिंग इस कांड में बाल-बाल बच गया।

दिल्ली के मुख्य मार्ग पर घटी इस घटना ने संपूर्ण अंग्रेजी शासन को हिला दिया। जो अंग्रेज कलकत्ता को छोड़ दिल्ली सुरक्षा की दृष्टि से आए थे, उन्हें दिल्ली में भी अब अपनी नींव हिलती दिखाई दी। चारों तरफ तहलका मच गया। सरकार की पूरी शक्ति इस बमकांड के पीछे क्रांतिकारियों को ढूंढने में लग गई, किंतु क्रांतिकारियों की सुनियोजित योजना के कारण उनका पता न लगा सकी। जिन क्रांतिकारी युवकों ने इस घटना का आयोजन मास्टर अमीरचंद और रासबिहारी के नेतृत्व में किया, उनके मुख्य अवध बिहारी, दीनानाथ, बालमुकुंद, हनुमंत सहाय, बसंत कुमार तब लिबर्टी के नाम से चार क्रांतिकारी पर्चे लिखे और बांटे। मई के पर्चे में यह पुराना शेर भी लिखा था-

गाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की
तख्ते लंदन तक चलेगी, तेग हिंदुस्तान की।।

इस पर्चे में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने की भी चर्चा थी। इसके बाद तीन ऐसे ही जोशीले पर्चे 20 जुलाई 1913 और दिसंबर 1913 में प्रकाशित हुए। इन क्रांतिकारियों ने 17 मई को जब लाहौर के लारेंस गार्डन में पंजाब के सभी पदाधिकारी

****
एकत्र हुए तो उन सबको उड़ा देने के लिए भी एक बम यहां रखा, पर बम फटने से एक माली के अलावा कोई नहीं मरा और अंग्रेज अधिकारी बच गए।

इन घटनाओं और बमकांडों ने सरकार की नींद हराम कर दी। दिल्ली और लाहौर में जब बम फेंकने वालों का पता न चला तो तलाशी का चारों ओर जाल बिछाया गया। कलकत्ते के राजा बाजार में एक मकान की तलाशी हो रही थी कि उसमें अवध बिहारी का पता निकल आया। उन दिनों मास्टर अमीरचंद के मकान की भी तलाशी ली गई और मकान में बम की एक टोपी मिल गई। इसी तलाशी में लाहौर से लिखा एक पत्र मिला, जिसमें एक एम.एस. के हस्ताक्षर थे। पूछने पर पता चला कि वह दीनानाथ का लिखा हुआ था।

सरकार ने उनका पता चलाने के लिए कई दीनानाथ पकड़े किन्तु प्रमाण नहीं मिलने के कारण उन्हें छोड़ दिया। अंततः एक दिन वास्तविक दीनानाथ भी पकड़ा गया। यह बड़ा चरित्रवान और घंटों ईश्वराधना में तल्लीन रहने वाला व्यक्ति था। पकड़े जाने पर वह बराबर रोता रहा। उस दिन पता नहीं उसका साहस न जाने कहां काफूर हो गया। कहते हैं, सुपरिटेंडेंट सरदार सुखासिंह की लाल-लाल अंगारे की तरह दहकती आंखों को देखकर दीनानाथ ने कांपती हुई आवाज में कह दिया- लो! मैं सब भेद बता देता हूं, पर दया करके ये आंखे न दिखाएं। उसने सैंकड़ों पृष्ठों का वक्तव्य दिया। एक-एक बात सच-सच है। परिणामस्वरूप मास्टर अमीरचंद अवधबिहारी, बालमुकुंद, बसंत कुमार विश्वास, बलराज,हनुमंत सहाय आदि अनेक क्रांतिकारी पकड़ लिए गए।

अभियोग चला ! आप पर लिबर्टी लीफलेट लिखने तथा अन्य अनेक आरोप लगाए गए। यद्यपि उन दिनों किसी क्रांतिकारी का पक्ष लेना मृत्यु को निमंत्रण देना था। फिर भी अनेक बड़े-बड़े लोगों ने आपके मुकदमों की पैरवी की। यद्यपि आपको यह तब सुनवाई नाटक प्रतीत होती थी, फिर भी मामला अदालत में चला। हतभाग्य से मास्टर जी का गोद लिया हुआ पुत्र सुल्तानसिंह ही सरकारी गवाह बन गया और उसने सारी बातें बता दी-

बागवां में आग दी जब आशियाने को मेरे,
जिनमें तकिया था, वही पत्ते अब हवा देने लगे।

कहते हैं, उस दिन मास्टर अमीरचंद भी अपने को संभाल न सके और उनके नेत्रों से टप-टप आंसू गिरने लगे। मनुष्य सब कुछ सहन कर सकता है परंतु अपने

****
प्रियजनों को जिन्हें हृदय में सबसे ऊंचा स्थान दे रखा हो, उसका विश्वासघात सहना कठिन होता है। मास्टर जी जैसा गंभीर व्यक्ति इसे सह न सका। जब उन्हें अपने इस कृतघ्न बेटे को समझाने के लिए कहा गया तो वे गरज कर बोले-ना खुदा का एहसां ले बलां मेरी

अंततः 25 अक्टूबर 1914 को मुकदमे का फैसला सुनाया गया। दिल्ली के एडिशनल जज हेरिसन ने मास्टर जी को फांसी की सजा दी। भाई परमानंद आदि के प्रयत्न से प्रिवि-कौंसिल में भी अपील की गई, पर वह भी खारिज हो गई। इंग्लैंड में अपील के खारिज होने का समाचार प्राप्त होते ही भाई परमानंद को भी लाहौर के प्रथम षडयंत्र केस के आरोप में बंदी बना लिया गया था। मास्टर जी एवं उनके दो साथियों अवध बिहारी और बालमुकुंद को 8 मई 1915 को दिल्ली की जेल में फांसी दे दी गई। उनके एक अन्य सहयोगी श्री बसंतकुमार को अम्बाला में फांसी पर लटकाया गया, किंतु मास्टर अमीरचंद और उनके साथियों ने उफ तक नहीं की। वे हंसते-हंसते मातृभूमि की बलिवेदी पर अर्पित हो गए। वह मकान जिसमें बैठकर इस योजना को बनाया और कार्यरूप दिया गया, आज भी चांदनी चौक में है। उनका मकान इतना प्रसिद्ध था कि वे हंसी-हंसी में कहा करते थे कि दिल्ली में आकर किसी से भी बंदर मास्टर का मकान पूछने पर उनके घर का पता चल जाएगा। आप एक आदर्श अध्यापक और क्रांतिकारी होने के साथ-साथ उर्दू तथा अंग्रेजी के अच्छे लेखक भी थे। उन्होंने अपने विचारों के प्रसार के लिए उन्हीं दिनों 'आकाश' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। उसके सम्पादक क्रांतिकारी देशभक्त पंडित रामचंद्र थे। यह पत्र बड़ा ही लोकप्रिय हुआ। यद्यपि मास्टर जी इस संसार में नही है पर उनकी गौरव गाथा आज भी अमर है।

****

पश्चिमी बंगाल की राजनीति के शीर्ष व्यक्तित्व

श्री ईश्वरदास जालान

श्री ईश्वरदास जालान का नाम अग्रसमाज के उन शीर्ष व्यक्तियों में आता है, जिन्होंने अपने जीवन एवं कार्यों द्वारा समाज को गौरवान्वित किया और जो मानव समाज की अमूल्य निधि बन गये। राजनीति में लगातार 35 वर्ष से अधिक रह कर भी अपनी पवित्रता, चरित्र की शुद्धता और उच्च मादण्डों को बनाये रखना आज के युग में केवल उन जैसे महान व्यक्तित्व के ही वश की बात थी। आज के कलुषित वातावरण में उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। राजनीति में महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय, डॉ. राममनोहर लोहिया, जमनालाल बजाज, डॉ. रघुवीर जैसी महान विभूतियों की परम्परा के वे श्रेष्ठ प्रतिनिधि थे और गांधीजी के 'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाने रे' के गीत की प्रत्येक पंक्ति ही नहीं, प्रत्येक शब्द उन पर लागू होता था। उन्होंने अपने जीवन में इस आदर्श को साकार कर दिखाया था।

न त्वहं कामये राज्यम, न स्वर्गम् न च पुनर्भवम्।
कामये दुःखत्तनाम् प्राणिनामार्तिनाशनम्।

मुझे न राज्य की कामना है और न ही स्वर्ग की। मैं तो प्राणी मात्र के दुःखों का नाश चाहता हूं। ऐसे महान आदर्श से प्रेरित श्री ईश्वरदास जालान का जीवन न केवल अग्रसमाज के लिए अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए गौरव एवं प्रतिस्पर्द्धा का विषय है।

श्री ईश्वरदासजी का सम्पूर्ण जीवन, चिंतन, मनन, समाज सेवा के लिए अर्पित रहा। वे सच्चे कर्मयोगी, समाजसेवी और उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। ऐसे राजनीतिज्ञ, जिनकी कोटि का उदाहरण मिलना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य ही है। वे एक मारवाड़ी परिवार में 30 मार्च 1895 को मुजफ्फरपुर में जन्मे। पिता का नाम श्री गौरीदत्त जालान थ। 1914 ई. में बी.ए. पास कर उच्च शिक्षा हेतु कलकत्ता आ गए। उस समय मारवाड़ी समाज में बी.ए. की परीक्षा पास करना एक अजूबा समझा जाता था। पूरे हिन्दूस्तान में बी.ए. पास करने वाले मारवाड़ियों की संख्या अंगुली पर गिनने योग्य थी। आपने न केवल बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की अपितु विश्वविद्यालय में तृतीय स्थान प्राप्त कर अपनी अद्वितीय प्रतिभा को प्रकट किया। उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश आदि के महाविद्यालय भी सम्मिलित थे। इस स्थिति में भी आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम.ए. में द्वितीय स्थान प्राप्त कर अपनी विशिष्ट प्रतिभा की छाप अंकित की। आपकी महान प्रतिभा एवं योग्यता को देखते हुए आपको डिप्टी कलेक्टर का पद मिला किन्तु आपकी देश एवं

समाज सेवा की भावना इतनी प्रबल थी कि उच्च सरकारी पद भी आपके लिए प्रलोभन का विषय न बन सका और आपने सहजता से उसे ठुकरा दिया। कालान्तर में आप कलकत्ता उच्च न्यायालय में ख्याति प्राप्त सोलीसिटर बने। इस पद पर रहते हुए उन्होंने अर्थाजन से अपने व्यवसाय की पवित्रता और शालीनता को उच्च माना। वे मुकदमा करने वालों को लड़ाने की बजाय कोर्ट के बाहर उनका समझौता कर वाद-विवाद निपटाने में विशेष रूचि रखते थे। वे केवल सही मामले ही लेते थे और छल-कपट मुवक्किल को जीताना उनके स्वभाव का अंग न था।

श्री जालान की सामाजिक कार्यों में सदैव रूचि रही। जब वे युवा ही थे, उन्होंने मारवाड़ी युवक सभा की स्थापना की और उसके माध्यम से बालविवाह, वृद्ध विवाह का विरोध किया और समाज सुधार के लिए अनेक कार्य किये। उनकी इच्छा थी कि समाज की स्त्रियां पर्दे जैसी कुरीतियों का परित्याग कर देश की प्रगति में हिस्सेदार बनें और पुरूषों के साथ कंधे से कंधे मिला आगे बढ़ें। इसलिए मारवाड़ी युवक सभा के माध्यम से उन्होंने महिलाओं के उत्थान के लिए अपने प्रस्ताव पारित कराए। उन्होंने विधवा-विवाह के प्रचार के लिए भी अकथनीय प्रयत्न किए।

श्री ईश्वरदास जालान का अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना में भी विशेष योगदान था। वे वास्तव में उसके जनक थे परन्तु आपने स्वयं कभी कोई पद ग्रहण नहीं किया अपितु दूसरे सहयोगी कार्यकर्त्ताओं को ही दायित्व भार दे उन्हें प्रोत्साहित करते रहे। उनकी प्रेरणा से मारवाड़ी हाई स्कूल, प्राइमरी स्कूल, धर्मशाला आदि अनेक संस्थाओं का निर्माण हुआ।

वे मारवाड़ी समाज के सजग प्रहरी और अद्वितीय शुभचिंतक थे। उन्होंने सम्मेलन के माध्यम से सदैव शिक्षा प्रसार और संगठन पर बल दिया। समाज सुधार के नाम पर वे समाज और सम्मेलन को विभक्त करने के सदैव विरोधी रहे। उन्होंने अपने जीवन में समाज सुधार के लिए कट्टरता की बजाय समन्वय के मार्ग को चुना और विरोधियों को समझा-बुझा कर सही मार्ग पर लाने के लिए अथक प्रयत्न किया, किन्तु समझाने के नाम पर उन्होंने समाज पर व्यंग्य, आरोप, लांछन लगाना कभी स्वीकार नहीं किया। वे बिना हिचकिचाहट के हर अन्याय का सामना स्वयं करते और कार्यकत्ताओं को भी उसके लिए प्रेरित करते। पर्दा प्रथा और दहेज प्रथा के विरूद्ध आंदोलन में भी उनका सक्रिय योगदान रहा। उन्होंने आसाम, बिहार आदि प्रान्तों में मारवाड़ी समाज के विरूद्ध होने वाले अत्याचारों का तीव्र प्रतिरोध किया और उनकी सुरक्षा के लिए जबरदस्त प्रयास किये। उन्होंने विवाह शादियों में दिखावे व आडम्बरों का भी विरोध किया।

****

आपने जाति, भाषा, प्रान्तीयता से परे हटकर समाज सेवा का जो कार्य किया, उसने पूरे समाज की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। वे समाज के भीष्म पितामह थे पश्चिमी बंगाल की राजनीति में आपका शीर्ष स्थान रहा। 1927 में ही वे कलकत्ता कॉर्पोरेशन के सदस्य चुने लिये गये। 1938 में वे बंगाल असेम्बली के सदस्य बने। व्यापारिक विषयों पर अनेक बातें निर्भीकता से असेम्बली में रखने वाले वे एक मात्र सदस्य थे। उनकी वक्तृता बड़ी ही विद्वतापूर्ण होती थी। 1946 के असेम्बली चुनावों में वे पुनः निर्विरोध चुने गये और लोकप्रियता का परिचय दिया। वे बड़ा बाजार क्षेत्र से कलकत्ता कॉर्पोरेशन के कौंसलर भी चुने गये।

राजनीति में अपनी गौरवपूर्ण भूमिका से उन्होंने बड़ा बाजार की खूब सेवा की। 1947 में भारत के आजाद होने पर जब डॉ. प्रफुल्लचंद्र घोष के नेतृत्व में प्रथम कांग्रेसी मंत्रिमण्डल गठित हुआ तो आप विधान सभा के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और उस पर वर्षों तक कार्य करते हुए आपने जिस योग्यता, सच्चाई और न्याय दृष्टि का परिचय दिया, वह इतिहास की महत्वपूर्ण वस्तु है। अध्यक्ष के रूप में उनकी भूमिका की विरोधियों ने भी मुक्त कंठ से प्रशंसा की और वे समानरूप से उनके श्रद्धाभाजन रहे। तत्कालीन विरोधी नेता और वर्तमान मुख्य मंत्री श्री ज्योति वसु ने स्वयं उनकी निष्पक्षता की भूरि-भूरि सराहना की थी। आप उच्चकोटि के वक्ता भी थे। लंदन में आयोजित राष्ट्रमंडलीय देशों के विधान सभाध्यक्षों के सम्मेलन में आपने अंग्रेजी पत्रों में जो वक्तव्य दिया, विधि व विज्ञान के बड़े-बड़े नेताओं ने उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और बाद में वह भाषण पुस्तकाकार रूप में भी प्रकाशित हुआ। स्पीकर के पद पर रहते हुए उन्हें अनेक बार सरकारी इच्छाओं के विरूद्ध चलना पड़ा किन्तु वे सत्य और निष्पक्षता के मार्ग से बिल्कुल न हटे। 1952 में जब देश में प्रथम आम चुनाव हुए, उन्होंने अध्यक्ष पद की गरिमा बनाये रखने के लिए स्वतंत्र रूप से चुनाव लड़ने की वकालत की और पार्टी टिकट पर खड़ा किये जाने का विरोध किया किन्तु उनकी न चली। इसके पश्चात् पश्चिमी बंगाल मंत्रिमंडल में लगातार 15 वर्षों तक आपके विभिन्न पदों पर मंत्री के रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। कांग्रेसी मंत्रिमण्डल में वे स्वायत शासन एवं विधिमंत्री रहे। इस अवधि में उन्होंने नगर निगम के लिए नया कानून बनाकर तथा पार्षदों को अधिक अधिकार दिला कर उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने गंगासागर मेले के लिए भी एक आर्डिनेंस पास कराया ताकि तीर्थ यात्रियों को उचित सुविधा प्राप्त हो सके। कलकत्ता में सिटी सिविल कोर्ट की स्थापना, जमींदारी उन्मूलन, कलकत्ता इम्प्रूवमेंट संशोधन कानून, हावड़ा इम्प्रूवमेंट बिल, पंचायत बिल आदि में उनकी विशिष्ट भूमिका रही और अग्रवाल समाज में उनकी प्रेरणा से कार्यकर्त्ताओं की एक लम्बी कतार तैयार

****

हुई। वे समाजोन्नति के महानकर्त्ता थे। उनकी प्रबल भावना थी कि अग्रवाल समाज की युवा पीढ़ी व्यापार के अतिरिक्त औद्योगिक विकास, अध्यात्म चिंतन, राजनीतिक चेतना और समाजोन्नति के द्वारा शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान करें। उन्हीं की प्रेरणा का परिणाम है कि आज अग्रसमाज राष्ट्रीय प्रगति की दिशा में बहुमुखी योगदान देने में संलग्न है और देश सेवा में सर्वोपरि है। द्वितीय आम चुनाव में आप विजयी हुए और 1962 तक लगातार स्वायतशासन विभाग को संभाला। उनके कार्यकाल में ही गंदी बस्तियों के सुधार की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य हुआ। तृतीय आम चुनाव 1962 में बड़ा बाजार क्षेत्र के कम्युनिस्ट उम्मीदवार से आपका जोरदार मुकाबला हुआ किन्तु उस कड़े मुकाबलें में भी आप विजयी रहे और आपको विधान बाबू मंत्रिमण्डल में विधि मंत्री का पद सौंपा गया। 1963 में कामराज योजना के अनुरूप उन्होंने भी अपने पद से इस्तीफा दे दिया किन्तु उनका इस्तीफा स्वीकार नहीं हुआ। उन्होंने न्याय विभाग को शासन विभाग से अलग करने की दिशा में कई कदम उठाये ताकि न्यायपालिका सुचारू रूप से कार्य कर सके।

1967 में उनका मुकाबला जनसंघ के श्री बनारसी प्रसाद केटिया से हुआ किन्तु उस कड़े मुकाबले में आप 10,000 मतों से विजय प्राप्त करने में सफल रहे। इस प्रकार लगातार चार चुनावों में एक ही विधान सभा क्षेत्र से निर्वाचित हो अपनी लोकप्रियता का विशेष प्रतिमान स्थापित किया। 1968 में पश्चिमी बंगाल विधान सभा के भंग कर दिए जाने पर उन्होंने खराब स्वास्थ्य के कारण राजनीति से अलग होने का निश्चय किया और स्वेच्छा से राजनीति से संयास ले लिया और अपना ध्यान राजनीति से धर्म एवं समाज सेवा की ओर केन्द्रित कर लिया।

1971 में उनकी सोलीसिटरी के 50 वर्ष पूरे होने पर उनकी स्वर्णजयंती मनाई गई और उनका भव्य स्वागत हुआ। 1977 में उनकी सामाजिक सेवाओं को देखते हुए कलकत्ता में 29 अगस्त को विशाल अभिनंदन समारोह आयोजित किया गया और उन्हें अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया गया।

इस प्रकार श्री ईश्वरदास जालान ने 1938 से लेकर 1968 तक निरन्तर 30 वर्ष तक बंगाल असेम्बली के सदस्य निर्वाचित होकर अपनी अद्भुत लोकप्रियता का परिचय दिया। किसी गैर हिन्दी भाषी राज्य में लगातार मंत्रिमंडल में बने रहना भी उनकी विलक्षण प्रतिभा का परिचायक था। वे उच्च कोटि के सोलीसिटर थे और सांसद के रूप में भी उनकी ख्याति बराबर बनी रही। बंगाल विधान सभा के स्पीकर के रूप में तो उनकी भूमिका बड़ी ही गौरवपूर्ण रही और सरकार तथा विरोधी पक्ष दोनों का ही सम्मान प्राप्त कर उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। भूतपूर्व मुख्यमंत्री प्रफुल्लचंद्र सेन ने उनके

मंत्रिमंडल के कार्यकाल की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उन्होंने अपने विभाग का कार्य बड़े ही दायित्वपूर्ण और ईमानदारी से सम्पन्न किया। कांग्रेस पार्टी के सदस्य के रूप में वे न केवल कांग्रेस पार्टी के प्रति निष्ठावान रहे अपितु इस बात का भी ध्यान रखा कि संस्था का सुनाम रहे। वे इस शताब्दी के पांचवें व छटे दशक के प्रमुख राजनीतिज्ञ थे। जनता के गरीब वर्ग के वे सच्चे हितैषी रहे।

श्री ईश्वरदास जालान के विषय में जो सबसे बड़ी बात कही जा सकती है, वह यह है कि उन्होंने जिस पद पर भी कार्य किया, उन्होंने पद की मर्यादा और गौरव को बनाये रखा। उनके जीवन की यदि वर्तमान नेताओं से तुलना की जाए तो विश्वास ही नहीं होगा कि उन जैसा आदर्श व्यक्तित्व भी आज की राजनीति में संभव है। उन्होंने अपने चरित्र की निष्कलंकता को सदैव बनाये रखा। उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद उनका जीवन सादगीपूर्ण तथा उनके घर का दरवाजा सबके लिए सदा खुला रहा। किसी भी समय किसी की भी बात सुनने और उसकी मदद करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। यही उनकी लोकप्रियता का रहस्य था। उनके 35 वर्षों के दीर्घ सेवाकाल में कभी किसी ने अंगुली उठाने का साहस नहीं किया। ऐसा सौभाग्य बहुत ही कम लोगों को मिलता है।

इसके साथ ही वे कुशल वक्ता, उच्चकोटि के लेखक और विद्वान थे। उनके भाषणों का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता था। सम्मेलन के सर्वस्व होते हुए भी उन्होंने कार्यकर्त्ताओं को विशेष सम्मान दिया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं कर्तव्य से न केवल सम्पूर्ण अग्रसमाज को गौरवान्वित किया अपितु बंगाल में और राष्ट्र की श्रेष्ठतम विभूतियों में भी अपना नाम अंकित कराया। अग्रसमाज ऐसी महान विभूति को जन्म देकर निःसंदेह गौरव का अनुभव कर सकता है। एक कवि के शब्दों में-

नहीं धन्य संसार में जन्म उसका सार हो,
निज जाति और समाज का जिससे न उपकार हो।

1980 में कलकत्ता में आपका देहावसान हो गया। हमें सरकार से अनुरोध कर डाक टिकट प्रकाशित कराना उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है।

ज्योति प्रसाद अग्रवाल

श्री ज्योतिप्रसाद, अग्रवाल समाज की ऐसी महान विभूति हैं, जिन्हें श्रीमंत शंकरदेव के बाद असम का सबसे लोकप्रिय व्यक्ति कहा जा सकता है। उन जैसी बहुमुखी प्रतिभा का धनी आज तक न असम में हुआ है और उनके विराट व्यक्तित्व को देखते हुए नहीं लगता, आने वाला युग वैसी किसी महान विभूति को जन्म दे सकेगा। वे सर्वतोत्मुखी प्रतिभा के धनी थे, जिन्होंने अपनी प्रतिभा से साहित्य, संगीत, कला, नाटक, नृत्य, समालोचना काव्य, स्थापत्य कला, पत्रकारिता आदि विविध विधाओं को एक साथ अलंकृत कर असम के सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठा और ख्याति प्राप्त की। असमिया साहित्य की तो वे अमूल्य निधि हैं, जिन्होंने अपनी अद्भूत लेखन एवं कृतित्व से असमिया भाषा के साहित्य को अमर बना दिया।

श्री ज्योतिप्रसाद अग्रवाल का परिवार मूल रूप से राजस्थानी था, जो कभी जीविका की खोज में असम में जाकर बस गया था। उनके पूर्वज श्री नौरंगराय अग्रवाल केटिया चुरू निवासी थे, जो 1828 में व्यवसाय वाणिज्य की खोज में फरूखाबाद, मिर्जापुर होते हुए ग्वालपाड़ा पहुंच गये थे, जो असम का मुख्य वाणिज्य केन्द्र था। उन्हीं के परिवार में श्री हर विलास के पौत्र रूप में श्री ज्योतिप्रसाद का जन्म 17 जून 1903 को डिब्रूगढ़ में ताम्बूलवाड़ी नामक स्थान पर हुआ। पिता श्री परमानंद अग्रवाल और माता किरणमयी दोनों ही कलासाधक और संगीतप्रेमी थे। उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा तेजपुर हाईस्कूल में प्राप्त की और आगे पढ़ने के लिए डिब्रूगढ़ चले गये, किन्तु वे मैट्रिक परीक्षा भी उत्तीर्ण नहीं कर पाए थे कि देशभक्त एवं त्याग की भावना ने उन्हें स्वाधीनता आंदोलन में कूदने के लिए विवश कर दिया। गांधीजी के असहयोग आंदोलन में देशवासियों के कूदने के आह्वान को वे अनसुना न कर सके और आजादी की लड़ाई में कूद पड़े और पढ़ाई को बीच में ही छोड़ दिया। इसके उपरान्त उन्होंने कलकत्ता के नेशनल कॉलेज से आई.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की पर नेशनल कॉलेज के बंद हो जाने पर ये अध्ययनार्थ इंग्लैंड चले गये और लंदन तथा जर्मनी में रह कर पढ़ाई के साथ-साथ फिल्मों का प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। इसी समय आप हिंमाशु राय एवं देविका रानी के सम्पक्र में आए और हिमांशु राय से सात माह तक बर्लिन में चलचित्र निर्देशन के विषय में शिक्षा ली। तदन्तर 1930 में उन्हें सश्रम कारावास और पांच सौ रूपये की सजा हुई। जेल में अस्वस्थ हो जाने पर भी उन्होंने किसी प्रकार से छूटना पसंद न किया और सजा

****

पूरी की। इसी बीच उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई उन्हें बड़ा आघात लगा और वे जीवन में रिक्तता सी महसूस करने लगे। इसी कारण 1936 में उन्होंने देवयानी नामक कन्या से विवाह किया किन्तु दुर्भाग्यवश देवयानी भी उनका अधिक समय साथ न दे सकी। 1949 में वे स्वर्गवासी हो गई। इस घटना ने ज्योतिप्रसाद को तोड़ कर रख दिया और वे अधिक रूग्ण हो गये।

इन सब विषम परिस्थितियों में भी ज्योतिप्रसाद ने अपनी रचनात्मकता नहीं गंवाई और उन्होंने अपनी आय को साहित्य, संगीत व कलासाधना में लगा दिया और वे चलचित्रों के निर्माण में जुट गये।

1934 में उन्होंने चित्रलेखा मूवीटोन नामक संस्था की स्थापना कर चाय बागान में 'चित्रवन' नामक स्टूडियो की स्थापना की और अथक परिश्रम द्वारा प्रथम असमिया चलचित्र 'जयमति' का निर्माण करने में सफलता प्राप्त की, जिसे 10 मार्च 1935 को पहली बार कलकत्ता में प्रदर्शित किया गया। इस असमिया चलचित्र से उन्हें पर्याप्त ख्याति मिली। वे 'रूपकंवर' की उपाधि से विभूषित हो असम की कला एवं संस्कृति के अविस्मरणीय अंग बन गए। भारत के विकसित राज्यों की तुलना में असम जैसे आार्थिक दृष्टि से पिछड़े राज्य में वाक् चलचित्र का निर्माण श्री ज्योतिप्रसाद की प्रतिभा का ही कमाल हो सकता था। उन्होंने इस फिल्म के निर्माण मे अद्भूत साहस का परिचय दिया। आपने उससे उत्साहित हो एक अन्य फिल्म 'इन्द्र मालती' का भी निर्माण किया। इसी फिल्म में असम के वर्तमान रंगकर्मी श्री भूपेन हजारिका ने ग्रामीण बालक का अभिनय किया था। इन फिल्मों के माध्यम से रूपकंवर ज्योतिप्रसाद ने असमिया भाषा का सम्पूर्ण भारत में एक विशेष पहचान प्रदान की।

इन चलचित्रों के निर्माण में उस अथक परिश्रम के फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य गिर गया, आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी, फिर भी साहित्य साधना तथा आजादी के आंदोलन से विमुख नहीं हुए। 1942 के भारत छोड़ो विप्लव में सहयोग देते हुए वे 'सर्व असम शक्ति सेना वाहिनी' के अधिनायक नियुक्त हुए और उन्होंने श्री हेम बरूआ के निर्देशन में उक्त आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।

ज्योतिप्रसाद ने इन सम्पूर्ण व्यवस्थाओं एवं आजादी के आंदोलन में भागीदारी के बावजूद अपनी सृजनशीलता की प्रवृत्ति को मंद न पड़ने दिया और साहित्य रचना में लगे रहे। उन्होंने 'शोषित कंवरी', 'कारेगर लिंगरी', 'रूपालीभ', 'लंमिता', आदि अनेक नाटकों का सर्जन कर असमिया नाटकों में यथार्थवादी परम्परा का सूत्रपात किया।

****

श्री ज्योतिप्रसाद की गणना असमिया के श्रेष्ठ नाटककारों में की जाती है। उन्होंने 14 वर्ष की आयु में ही 'सुनीत कुंवरी' नाटक की रचना कर ली थी, जो 1925 में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ। उन्होंने अनेक नाटकों का सृजन किया और वे असमिया नाट्य साहित्य के मार्गदर्शक एवं निर्देशक रूप में पहचाने जाते हैं। उन्होंने कई कहानियों का भी लेखन किया। असमिया नाटक क्षेत्र में उनकी देन के बारे में हिन्दी विश्वकोष में लिखा है- नाटक के क्षेत्र में अतुल भूपेन हजारिका से भी ज्यादा अग्रवाल का कार्य अधिक महत्वपूर्ण है। भारतीय निवासियों का इतिहास एवं संस्कृति ग्रंथ में लिखा है- 'ज्योतिप्रसाद अग्रवाल संभवतः असमिया नाट्य साहित्य की सबसे श्रेष्ठ विभूति है।'

यद्यपि श्री ज्योतिप्रसाद ने कविता सृजन की ओर कम ध्यान दिया किन्तु उन्होंने जो भी काव्य लिखा, वह उनके ही क्रांतिकारी एवं जनकवि रूप को प्रतिस्थापित करता है। उनकी कविताओं में असमिया साहित्य के सार, वहां के जातीय-बोध के साथ भारतीयता एवं विश्वजीवन के भाव का विशेष समन्वय है। उन्होंने अपनी कविताओं में बड़े ही उद्दात दृष्टिकोण का परिचय दिया है। यहां तक कि उन्होंने अपने बाल साहित्य में भी बच्चों में नैतिक भावना का समावेश करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने बड़े-बड़े विशालकाय ग्रंथ लिखने की अपेक्षा छोटी-छोटी कविताओं एवं नाटकों में अपनी बात को सरल ढंग में व्यक्त करने की कोशिश की है।

श्री ज्योतिप्रसाद ने अपने साहित्य में तत्कालीन राजनीति की भी अभिव्यक्ति की है। उन्होंने नाटकों में साम्राज्यवाद तथा सामन्ती संस्कृति का घोर विरोध किया है। दलितों के शोषण के प्रति भी उनमें तीव्र आक्रोश मिलता है। वे समाज में समानता, न्याय, भ्रातृत्व भाव के पक्षधर थे। गांधी जी के अंहिसात्मक आंदोलन में उनकी गहरी आस्था थी। गांधी जी जब भी कभी असम आते, वे ज्योतिप्रसाद के यहां ही ठहरते थे। इससे ज्योतिप्रसाद की गांधी जी को निकट से देखने और जानने का अवसर मिला और उनके त्याग एवं बलिदानों से प्रभावित हो उन्होंने अपने आपको स्वतंत्रता आंदोलन की बलिवेदी पर प्रस्तुत कर दिया।

श्री ज्योतिप्रसाद ने साहित्य की लगभग हर विधा में लिखा। जीवन के अंतिम दिनों में वे जब रूग्ण हो गए तो अपनी मातृभूमि तेजपुर वापिस चले आए और मृत्यु का वंदन करते हुए लिखा-

'हे मृत्यु नमस्कार, अन्धकार सियारे ज्वलिछे, तोर पोहर देश
तोर देशल यावलै, कोने, पिन्थिने नतुन वेश।

****

(हे मृत्यु! तुम्हें प्रणाम निवेदित है। अंधकार के उस पार तुम्हारे प्रभात का देश विराजमान है। तुम्हारे उस भूभाग में जाने के लिए किसने नवीन परिधान धारण किया है?)

श्री ज्योतिप्रसाद देश में सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रांति के समर्थक थे, जिससे इस धरा पर स्वर्ग के समान सुखद राज्य की स्थापना की जा सके। अपने माता-पिता से मिले संस्कारों ने उन्हें संगीत प्रेमी भी बना दिया था। इसी कारण आगे जाकर वे एक कुशल संगीतज्ञ भी बन गए थे।

श्री ज्योति प्रसाद अग्रवाल ने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं योगदान से न केवल अग्रवाल समाज अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र को गौरवान्वित किया। असम तो उनकी महान कृतियों से गौरवान्वित एवं कृतकृत्य हुआ ही है। खेद है कि इस महान विभूति से अधिकांश अग्रवाल अभी तक परिचित नहीं है। समाज का कर्त्तव्य है कि वह इस महान् विभूति के पूर्ण योगदान को समक्ष और उनके जीवन को विस्तृत रूप से प्रकाशित करें। साथ ही उन पर डाक टिकट प्रकाशित करने की भी मांग की जानी चाहिए। सन् 1951 के जनवरी माह में इस महान कलाकार एवं साहित्य सेवी का निधन केवल 48 वर्ष की अवस्था में ही हो गया। अग्रवाल समाज को इस विभूति पर गौरव है।

-श्री आकाश गर्ग, गुवाहाटी (आसाम) 781006

****

लाला मटोलचन्द्र अग्रवाल

सन् 1857 के स्वतंत्रता समर को उद्दीप्त करने वाले दो दिव्य तत्व थे स्वराज्य और स्वधर्म। इसी तथ्य की परिचायक थी दीन-दीन की गर्जना और दिल्ली के बूढ़े बहादुरशाह जफर का घोषणापत्र। सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम की घटनाओं को लेकी ने 'फिक्शन एक्सपोज्ड' के पृष्ठों में सहेजा है। उनमें दिल्ली सम्राट के उक्त घोषणापत्र का भी उल्लेख है। उसमें कहा गया था ''हे हिन्द के सपूतों, यदि हम संकल्प कर लेंगे तो क्षण भर में शत्रु को नष्ट कर देंगे। शत्रुओं का नाश कर हम अपने जान से प्यारे दीन और स्वदेश को पूरी तरह से भय मुक्त कर लेने में कामयाबी हासिल कर लेंगे।

दिल्ली के राज सिंहासन से उठी इस गूंज ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को ही इस तथ्य से अवगत करा दिया था कि वे भारत माता की संतान हैं, जो विदेशी सत्ता की दासता की बेड़ियों में जकड़ी है जिससे स्वाभिमान आहत हुआ है। उसकी मुक्ति ही हर भारतीय का कर्त्तव्य है। बहुत से वीर प्राण हथेली पर रख समर भूमि में लड़े तो ऐसे भी अनेक राष्ट्रभक्त थे, जिन्होंने हाथों में बंदूक और तलवार भले ही नहीं संभाली हो किन्तु स्वतंत्रता समर के महायज्ञ में अपनी जीवन-भर की अर्जित पूंजी प्रदान कर क्रांति की मशाल के लिए तेल जुटाने की भूमिका निभाई। उन्हीं में से एक थे गाजियाबाद के समीप स्थित डासना नगर के लाला मटोल चन्द्र अग्रवाल।

''गाजियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की।
तख्ते लंदन तक चलेगी, तेग हिन्दुस्तान की।।

बहादरशाह जफर के श्रीमुख से जब यह उद्घोष हुआ, तब ईमान की इस बू ने खेत-खलिहान में काम करने वाले किसानों के मन में आजादी का बीज अंकुरित किया। उस समय वाणिज्य व्यवसाय द्वारा प्रचुर सम्पदा अर्जित कर अपने नगर के प्रमुख रईस के रूप में चर्चित और सम्मानित लाला मटोल चन्द्र अग्रवाल के मन में भी भावनाओं का उद्वेग उभरा और उन्होंने भी जंगे आजादी के सूत्रधार बहादुरशाह जफर के आदेश पर अपना सब कुछ वार देने की तमन्ना मन में बसा ली। उनके क्षेत्र में बुलंदशहर जनपद की मालागढ़ रियासत के नवाब वलीदाद खां अंग्रेजों से टक्कर ले रहे थे। वहीं प्रणवीर प्रताप और महाराज अनंगपाल के वंशज राजपूतों की तलवारें भी फिरंगियों से दो-दो हाथ करने के लिए म्यान से निकल पड़ी थी। स्वतंत्रता के इस महायज्ञ में समिधाएं

समर्पित करते-करते जब बादशाह बहादुरशाह जफर का खजाना खाली हो गया तो वह स्थिति भी आ गई कि जब उनके लिए सैनिकों आदि का वेतन चुका पाना भी एक जटिल समस्या बन गया। संकट की उस घड़ी में बादशाह के कुछ सलाहकारों ने दिल्ली के आसपास के नगरों में रहने वाले कुछ सेठ साहूकारों को इस समस्या के बारे में सूचना भिजवाई और साथ ही उनसे यह आग्रह भी किया कि वे संकट की इस घड़ी में बादशाह को आर्थिक सहयोग प्रदान कर स्वतंत्रता समर में योगदान करें।

दिल्ली से लगभग पचास किलोमीटर की दूरी पर है पुराना कस्बा डासना। लाला मटोल चन्द्र अग्रवाल को भी डासना में संदेश प्राप्त हुआ। जिन्दा दिल इंसान तो वह थे ही। राष्ट्रभक्ति की भावना से भी आप्लावित था उनका हृदय। महाराणा प्रताप की विपन्न अवस्था में अपनी समग्र पूंजी उन्हें समर्पित कर देने वाले भामाशाह की कहानी तो लाला मटोल चन्द्र के लिए नई नहीं थी।

संदेश मिला तो वह तुरंत बादशाह के दरबार में उपस्थित होने के लिए व्यग्र हो उठे। सारी रात उनकी पलक एक क्षण के लिए भी नहीं झपक पाई। अभी सूर्यदेव की किरणें प्राची दिशा में अपनी लालिमा फैला ही नही पाई थी कि लाला मटोलचन्द्र अपने रथ में सवार होकर दिल्ली के लिए रवाना हो गए। दिल्ली पहुंचकर बादशाह बहादुरशाह जफर की सेवा में उपस्थित होकर उन्होंने अति विनम्र भाव सहित अनुरोध किया, ''मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?''

बूढ़े बादशाह बोले,''सेठजी, आप हमें कुछ धन उधार दे दें तो शुक्रगुजार रहूंगा। फिरंगी की गुलामी से मादरे वतन को निजात दिलाने के लिए हमने जो जंग छेड़ी है, उसमें हमारे अपने पास जो था, उसे लगा चुके है। इस जंग की कामयाबी के लिए हमें आपकी इमदाद की जरूरत है। अगर दिल्ली पर आजादी का परचम फहराता रहा और अंग्रेजों की साजिश नाकाम कर देने में हम कामयाब हो गए तो आपका एक-एक पैसा चुका दिया जाएगा।''

बादशाह के इन शब्दों को सुनकर सेठ मटोल चन्द्र के नेत्र सजल हो उठे और वह बोले, ''जहांपनाह, मेरे इलाके के राजपूतों और किसानों ने आपके फरमान पर अपनी जान हथेली पर धरकर जंगे आजादी में अपना शीश तक चढ़ाने की ठानी है। मैं भी उन्ही जांबाज और स्वाभिमानी लोगों के बीच रहने वाला एक अदना व्यापारी हूं। वे अपनी जान पर खेलकर अपना कर्त्तव्य निभा रहे है तो क्या मैं अपनी धन-दौलत आजादी की इस जंग के लिए आपके कदमों में सौंप कर मातृ-भूमि का कर्ज नहीं चुकाऊंगा?'' बादशाह ने जब डासना के इस रईस के उद्‌गार सुने तो उनका चेहरा

खिल उठा और बरबस उनकी जबान से निकल पड़े ये अल्फाज, ''आपके इस फैसले ने मेरे इरादे को नयी बुलंदी दी है। हिन्दुस्तानी कौम आपके इस किरदार से नया जोश पाएगी।''

लाला मटोल चन्द्र ने बादशाह से विदाई ली और वे डासना लौट आए। वहां पहुंचते ही उन्होंने छकड़ों में सोने के सिक्के भरवाए और अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों के साथ सारा धन दिल्ली भिजवा दिया। डासना के सेठ का यह खजाना जब दिल्ली दरबार में पहुंचा तो उसे देखते ही बहादुरशाह जफर के नेत्रों से अश्रु कण छलक उठे। वह बोले, ''जिस मुल्क में ऐसे वतन परस्त सेठ रहते हों वह मुल्क ज्यादा दिनों तक गुलाम नहीं रह सकता।''

देश की स्वाधीनता के लिए हुए संग्राम में अपनी समग्र पूंजी समर्पित कर देने वाले लाला मटोल चन्द्र की यह कुर्बानी उस महान संघर्ष का एक स्वर्णिम पृष्ठ है। उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर उन सैंकड़ों जवांमर्दों को नया उत्साह प्रदान किया, जिन्होंने आजादी की जंग में अपना जीवन वार देने तक का संकल्प ग्रहण कर विदेशी सत्ता के क्रीतदासों से दो-दो हाथ किए थे।

सेठ मटोल चन्द्र की हवेली आज भी डासना में विद्यमान है। लखौरी ईंटों से बनी इस हवेली में 52 चौखटें है। उसके कुछ हिस्से अब खंडहरों में बदल चुके हैं। अब उनके वंश में भी कोई नहीं है, परंतु उनकी दानवीरता तथा राष्ट्रभक्ति की कहानी आज भी उस अंचल के प्रचलित लोक गीतों में सुनी जा सकती है। वह ऐतिहासिक हवेली उस महान्‌ त्यागी की स्मृतियों को अपने कण-कण में सहेजे है और उसकी प्राचीरें हर राष्ट्रभक्त को एक संदेश सुनाती हुई प्रतीत होती है--

''स्वतंत्रता के महासमर में, अपना सब धन वार दिया।
तेरा सब कुछ तुझे समर्पित, यही कथन साकार किया।।''

सौजन्य से - सन्‌ सत्तावन के भूले-बिसरे शहीद

लाला हुकमचन्द जैन

सन् 1857 में भारत भूमि को विदेशी दासता से मुक्त कराने वालों में से जो प्रायः अनजान रहे हैं, उन्हीं में से एक थे हरियाणा प्रदेश की हांसी नगरी के निवासी हुकमचन्द जैन। इनका जन्म सन् 1816 ई. में वहां के प्रसिद्ध कानूनगो परिवार में श्री दुनीचंद जैन के कुलदीपक के रूप में हुआ। शिक्षा-दीक्षा हांसी में ही हुई थी। फारसी भाषा और गणित में उनकी विशेष रूचि थी।

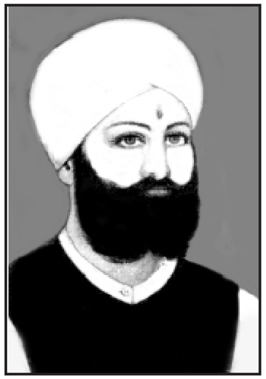

शिक्षा की समाप्ति के उपरांत हुकमचन्द दिल्ली के अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर की सेवा में नियुक्ति पा गये थे। सन् 1841 में बादशाह ने उन्हें हांसी व करनाल के कुछ इलाकों का कानूनगों बना दिया था और सम्मान के साथ इन इलाकों का प्रबंधक नियुक्त कर दिया था। सात वर्ष तक मुगल दरबार की सेवा में रहकर श्री हुकमचन्द हांसी लौट आए थे। किंतु बहादुरशाह का जो विश्वास उन्होंने प्राप्त किया था वह उनकी थाती बन गया था। इस बीच अंग्रेजों ने हरियाणा प्रांत को पूर्णतः अपने नियंत्रण में ले लिया था। कालचक्र की इस करवट से हरियाणा की हरी-भरी धरती पर भी पराधीनता का तुषारापात हो गया था। परंतु लाला हुकमचन्द की प्रशासनिक क्षमता को निरख-परख कर फिरंगी सत्ता ने भी उन्हें कानूनगों पद पर बनाए रखा। किंतु चांदी के चंद सिक्कों में इस स्वतंत्रता प्रेमी का ईमान खरीदने का अंग्रेज अधिकारियों का अरमान पूरा नहीं हो सका। हुकमचन्द के हृदय में अंग्रेजी सत्ता शूल-सी चुभने लगी।

सन् सत्तावन में जब मेरठ, दिल्ली और कालपी में स्वतंत्रता प्रेमियों ने आजादी की आरती उतारी और अवध के आजादी के दीवाने स्वतंत्रता के तराने गाते हुए समरांगण में उतर पड़े तो लाला हुकमचन्द भी शांत न रह पाए। बहादुरशाह जफर से संपक्र का तार तो पहले से ही जुड़ा हुआ था। दिल्ली जाकर उन्होंने बादशाह से भेंट की तथा क्रांतिकारी मंडल की उस बैठक में भी शामिल हुए, जिसमें महारानी लक्ष्मीबाई के दूत तांत्या टोपे तथा अन्य प्रमुख राष्ट्रभक्त शामिल हुए थे।

इस बैठक में लाला हुकमचन्द के स्वतंत्रता समर के संचालकों को

हरियाणावासियों की ओर से पूर्ण सहयोग का वचन दिया। उन्होंने बादशाह बहादुरशाह जफर को गोला-बारूद आदि की सहायता दिए जाने का भी विश्वास दिलाया। नवीन उत्साह और विश्वास हृदय में संजोए हुकमचन्द जैन स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए जीवन की अंतिम घड़ी तक संघर्षरत रहने का सत्संकल्प ग्रहण कर हांसी वापस लौटे।

वहां पहुंचकर उन्होंने देशभक्त युवकों को एकत्रित और संगठित करना शुरू कर दिया। सजग तरूणाई को उसके कर्त्तव्य का बोध कराने के बाद लाला हुकमचन्द जैन ने अपनी दृष्टि उस अंग्रेजी फौज पर डाली, जो हरियाणा से होती हुई दिल्ली की ओर बढ़ रही थी। आपके आह्वान पर हरियाणा के देशभक्त जवान अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े। उन्हीं के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना से जमकर संग्राम किया। परंतु दुर्भाग्य से उन्हें शाही सेना से सहायता नहीं मिल पायी, जिसकी आपने आशा लगाई थी। इस कारण आपकी आकांक्षा तो पूर्ण नहीं हो पाई।

इस असफलता के बाद भी हुकमचन्द का हौंसला बुलंद ही रहा और उन्होंने अपने एक अन्य सहयोगी मिर्जा मुनीर के साथ मिलकर फारसी में एक पत्र बूढ़े बादशाह बहादुरशाह जफर को लिखा। इसमें उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को जारी रखने के लिए शस्त्रों और सैनिकों की सहायता मांगी थी। वे बहुत समय तक इस पत्र का उत्तर पाने की प्रतीक्षा करते रहे। किंतु पत्र का उत्तर प्राप्त न हो सका। क्योंकि जो दिल्ली एक बार स्वतंत्रता के दीवानों के समक्ष नत मस्तक हो गई थी, उसकी जो कुछ अपनों ने ही अपने व्यक्तिगत सपनों को पूरा करने के लिए क्रांतिकारियों से छीनकर अंग्रेजों की दासतां के पंजों में डाल दिया था। बहादुरशाह जफर बंदी बना लिए गए थे और साम्राज्यवादी सत्ता के मुगल वंश के इस आखिरी चिराग की लौ को हमेशा के लिए बुझाने हेतु पूरा-पूरा स्वांग रच दिया था।

दिल्ली पर पूरी तरह अधिकार जमा लेने के बाद अंग्रेज अफसरों ने जब बूढ़े बहादुरशाह की निजी फाइलों को टटोला तो उन्हें लाला हुकमचन्द जैन द्वारा लिखा गया उपरोक्त पत्र भी मिल गया। यह पत्र 15 नवम्बर, 1857 को की गयी पड़ताल के दौरान मिला था। इस पत्र को दिल्ली के अंग्रेज कमीश्नर सांडर्स ने हिसार के कमिश्नर कार्टलैंड को इस सिफारिश के साथ भेजा कि हुकमचन्द जैन के विरूद्ध शीघ्रातिशीघ्र कठोर कार्यवाही की जाए।

पत्र मिलते ही हिसार से अंग्रेजी सेना का एक दस्ता हांसी जा पहुंचा और लाला हुकमचन्द जैन तथा मिर्जा मुनीर बेग के घरों पर छापे मारे गए। लालाजी, उनका भतीजा फकीरचंद और मिर्जा बेग तीनों को बंदी बनाकर हिसार ले जाया गया। एक सरसरी सुनवाई के पश्चात् 18 जनवरी, 1858 ई. को हिसार के मजिस्ट्रेट जान आकिन्सन ने

****

लाला हुकमचंद और मिर्जा मुनीर बेग को फांसी की सजा सुना दी और लालाजी के भतीजे फकीरचंद को मुक्त कर दिया।

19 जनवरी 1858 को लाला हुकमचंद और मिर्जा मुनीर बेग को लाला हुकमचंद के मकान के सामने ही फांसी पर लटका दिया गया। लाला हुकमचंद का दाह-संस्कार करने तक की अनुमति नहीं दी गयी। उनके शव को दफनाकर तथा मिर्जा मुनीर बेग के शव को जलवाकर उन्होंने अपनी अभद्रता का प्रदर्शन कर दिया। लाला हुकमचंद मात्र चालीस वर्ष कि आयु में ही शहीद हो गए थे। वह अपनी पीछे दो पुत्र छोड़ गए थे। उनमें से न्यामत सिंह की आयु 8 वर्ष थी और दूसरा पुत्र सुगनचंद तो केवल 19 दिन का ही था। उनकी धर्मपत्नी अपने दोनों बच्चों को लेकर गुप्त रूप से अपने एक संबंधी के यहां शरण लेने चली गई थी। लाला हुकमचंद जैन की करोड़ों रूपये की चल-अचल सम्पत्ति कौड़ियों के मोल नीलाम कर दी गयी। देश के स्वतंत्र होने के बाद हांसी के नागरिकों ने अपने इस प्रेरणा पुरूष की स्मृति को कायम रखने हेतु 22 जनवरी 1961 को अमर शहीद हुकमचंद पाक्र बनवाया। उसके कण-कण से वीर हुकमचंद का यशोगान गूंजता-सा लगता है। उनका यह आह्वान आज भी देशभक्तों को प्रेरणा दे रहा है कि ''स्वतंत्रता की ज्योति को ज्योतित रखने हेतु अपने रक्त को तेल बनाकर देह की बाती जलाने का साहस संजोना पड़ता है।''

- सोजन्य से : सन् सबाावन के भूले-बिसरे शहीद

लाला झनकूमल अग्रवाल

भारतवर्ष के शांत आकाश में मनुष्य की हथेली के बराबर एक छोटा-सा बादल का टुकड़ा भी उठ सकता है। हो सकता है, वह बढ़कर सारे आकाश पर छा जाए और फिर झंझा के रूप में फूटकर हमें तबाह कर दे।' यह शब्द लार्ड केनिंग ने सन् 1856 में विलायत से प्रस्थान करते समय कहे थे। भारत में प्रबल झंझावत उठा और एक वर्ष में ही हथेली के बराबर बादल का एक टुकड़ा सारे आकाश पर छा गया। उसका प्रारम्भ ऐतिहासिक नगरी मेरठ से दस मई 1857 को हुआ। मेरठ के समीपस्थ अंचलों में एक ही हुंकार, निर्धन और धनी, मजदूर और किसान, जमींदार और व्यापारी सभी के एक समवेत कंठों से गूंज उठी थी- ''तोड़ेंगे दासता के बंधन-भारत माता तुझे नमन।''

धौलाना क्षेत्र में यह बिगुल बजा। स्वतंत्रता की शहनाई की गूंज पिलखुवा में गूंजी, डासना में उभरी, मंसूरी में आजादी की मस्ती का राग छिड़ा तो मुकीमपुर भी पीछे नही रहा। इस क्षेत्र में बसे महाराणा प्रताप के वंशज शिशोदिया राजपूतों के हृदय फिरंगी सत्ताधारियों के विरूद्ध पहले से ही दहक रहे थे। मेरठ से उठे आजादी के तूफान ने उन नौजवानों की जिन्दगी में भी झंझावत ला दिया। शीश हथेली पर धरकर वे मचल उठे तो धौलाना ग्राम के लाला झनकूमल के मानसपटल पर भी प्रणवीर प्रताप के अनन्य सहयोगी भामाशाह की स्मृतियां उभर उठी। राष्ट्रभक्ति की भावना से उनका हृदय आप्लावित हो उठा। उन्होंने ग्राम में स्वातंत्रता योद्धाओं की एक गुप्त बैठक में सहर्ष घोषणा की--''आप महाराणा प्रताप के वंशज हैं, मैं भामाशाह के समान धनिक तो नहीं हूं। किन्तु अपनी पूरी सम्पदा राष्ट्र की स्वाधीनता के महायज्ञ में समिधा बनाकर समर्पित करने में कदापि नही चूकूंगा।

देशभक्त ग्रामीणों ने स्वतंत्रता की पावन पताका फहराते हुए धौलाना के पुलिस थाने पर धावा बोल दिया। वहां का थानेदार येन-केन प्रकारेण अपने प्राण बचाकर समीप के ग्राम ककराना में वहां के लोगों की मदद से गोबर के एक बिटोरे में जा छिपा। वहां से लुकता-छिपता वह मेरठ जा पहुंचा। जहां उसने अपने अंग्रेज अधिकारियों को धौलाना ग्राम के अनेक क्रांतिकारियों के नामों की सूची बनाकर सौंप दी। फिर अगले ही दिन गोरों की एक बड़ी पलटन धौलाना के स्वतंत्रता शूरों से प्रतिशोध लेने के लिए आ धमकी। सारा ग्राम घेर लिया गया। सुमेरसिंह, किट्टासिंह, साहबसिंह, जीराज सिंह, मक्खन सिंह, चंदन सिंह, दौलत सिंह, जिया सिंह, दुर्गा सिंह, मसाहब सिंह, वजीर सिंह और महाराज सिंह तथा दलेल सिंह को बंदी बना लिया गया। बाद में तलाश हुई लाला झनकूमल सिंहल की। उन्हें भी उनकी दुकान से पकड़वाकर अंग्रेज अफसर के समक्ष पेश

किया गया। अफसर बोला ''लाला, ये राजपूत तो बलवाई हो सकते हैं, किंतु वैश्यों की तो हम बहुत कद्र करते हैं। बता दो सच्चाई। यदि तुम निर्दोष हो तो तुम्हे रिहा कर दिया जाएगा।''

तभी सीधे-सादे से प्रतीत होने वाले लाला झनकूमल गरज उठे, ''यदि ये राजपूत और किसान अपराधी हैं तो मैं भी निर्दोष नहीं हूं। यों मैं अपने आपको अपराधी मानने को तैयार नहीं, क्योंकि अपनी मातृभूमि को गैरों की दासतां के बंधनों से स्वतंत्र कराने की कोशिश को मैं हर देशभक्त का धर्म मानता हूं।''

अंग्रेज अधिकारी लाला झनकूमल के मुख से स्पष्ट उत्तर सुनकर क्षण-भर के लिए तो सिर झुकाकर बैठा रहा। शायद वह राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत इस नरपुंगव के समक्ष अपने हृदय में उमड़ी श्रद्धा का मौन प्रदर्शन कर रहा था। किंतु वह तुरंत ही संभला और उसने लाला झनकूमल को उनकी देशभक्ति के पुरस्कार स्वरूप फांसी दे देने का आदेश सुना दिया। उन तेरह राजपूत किसानों के साथ लाला झनकूमल को भी सरेआम पीपल के पेड़ पर लटकाकर फांसी दे दी गयी। फांसी के फंदों को उन राष्ट्रभक्तों ने हंसते-हंसते चूम लिया। सभ्यता के प्रसारक होने का दंभ भरने वाले फिरंगी शासकों के क्षुब्ध मन इन नरवीरों के प्राण लेकर ही संतुष्ट नहीं हुए। वे तो आजादी के दहकते शोलों को पूरी तरह से दबाने के लिए इस सम्पूर्ण क्षेत्र में आतंक फैलाना चाहते थे। उन्होंने चौदह कुत्ते इकट्ठे कर उन्हें गोलियों से मरवाया गया और उन चौदह राष्ट्रभक्तों के शवों के साथ डाल दिया। फिर एक अंग्रेज अफसर ने चीखकर घोषणा की ''गांव के लोगों अच्छी तरह देख लो, अंग्रेजी हुकूमत की खिलाफत करने वालों को कुत्तों की मौत मरना पड़ता है।'' इन राष्ट्रभक्तों के शव जमीन में एक बड़ा खड्डा खुदवाकर उन कुत्तों के शवों के साथ ही दफना दिए गए।

26 नवम्बर 1857 को अंग्रेजों ने धौलाना ग्राम को जब्त कर लेने की घोषणा कर दी। उनकी यह क्रूरता इतिहास के पन्नों में सदा के लिए अंकित हो गयी। भारत के स्वाधीन होने के दस वर्ष बाद जब 1957 में अठारह सौ सत्तावन के स्वतंत्रता समर की शताब्दी देश भर में मनायी गयी तो इस क्षेत्र के विख्यात शिक्षा सेवी ठाकुर मेघनाथ सिंह शिशोदिया के प्रयास से उन चौदह शहीदों की स्मृति में शहीद स्मारक का निर्माण कराया गया। 11मई 1957 को क्रांतिकारी श्री रणवीर (तत्कालीन संपादक मिलाप) ने इस स्मारक का विधिवत उद्घाटन किया था।

- सौजन्य से : सन् सत्तावन के भूले-बिसरे शहीद

स्वतंत्रता के दीवाने : हंसराज

1857 में वास्तव में दिल्ली दहक उठी थी तो उसके समीपवर्ती ग्राम्य अंचलों में अगणित मातृभक्त मचल उठे थे। उन्हीं में से एक गांव महानगरी दिल्ली के समीप आज भी स्थित है अलीपुर ग्राम। जी.टी.रोड पर कई शताब्दियों से बसे इस ग्राम ने 1857 के स्वतंत्रता समर में बढ़-चढ़कर भाग लिया था। इस ग्राम के स्वतंत्रता प्रेमी ग्रामीणों ने तहसील में प्रवेश कर सरकारी कागजात को जला दिया। अंग्रेजी सरकार के क्रीतदास अनेक दुकानदार भी उन राष्ट्रभक्तों का कोप-भाजन बने और उनकी दुकानें भी जला दी गयी। कई अंग्रेज भी ग्रामीण योद्धाओं के कोप भाजन का शिकार हो गए थे।

उस समय स्वतंत्रता के इन दीवानों का नेतृत्व किया था हंसराम अग्रवाल ने। नितांत स्वस्थ, सुंदर और आकर्षक व्यक्तित्व का धनी हंसराम। अलीपुर ग्राम में धधकी क्रांति की मशाल को बुझाने के उपक्रम में मेटकाफ जिसे एक आंख खराब होने के कारण काना साहब भी कहा जाता था। सेना लेकर अलीपुर पहुंचा और उसे घेर लिया। उसने अपना शिविर दो कदम्ब के वृक्षों की नीचे लगाया था।

वे दोनों वृक्ष आज भी खड़े है जो अंग्रेजों द्वारा अलीपुर ग्राम में किए गए पाश्विक अत्याचारों की दास्तान की याद दिलाते हैं। ग्राम के चारों ओर घेरा डालकर मेटकाफ ने वहां तोपखाना भी लगा दिया था। किसी भी व्यक्ति को गांव से बाहर निकलने की इजाजत नहीं दी गयी। अंग्रेजी फौज के जवानों ने इस ग्राम के जिन 75 लोगों को बंदी बनाया था उनमें हंसराम अग्रगण्य थे।

उसे बंदी बनाने के लिए कुछ अंग्रेज जंगल में पहुंचे थे, क्योंकि उन्हें हंसराम घर पर नहीं मिल पाया था। उसे खेडे के निकट कुंडो के पास बंदी बनाया गया था। हंसराम का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि जिस अंग्रेज अधिकारी ने उसे बंदी बनाया था, उसी ने उसे भाग निकलने की सलाह दी।

जब हंसराम के समक्ष अंग्रेज अधिकारी ने यह सुझाव रखा तो राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए साथ जिएंगे, साथ मरेंगे के संकल्पमंत्र से दीक्षित उस जवां मर्द ने जवाब दिया, ''मैं तो अपने अन्य साथियों के साथ ही रहना चाहता हूं। वे जहां भी जाएंगे वहीं मैं जाऊंगा। हम सब ने भारत माता के गले से अंग्रेजी गुलामी का तौक उतार फेंकने की कसम खाई है। मैं किसी की दया का तलबगार नहीं। मेरा धर्म

अपने साथियों के साथ ही जीना और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यदि मरण का वरण करना पड़ेगा तो उनके साथ ही इस नश्वर काया का परित्याग करना है।''

अंततोगत्वा उसे भी ग्राम में बंदी बनाए गए अन्य लोगों के साथ दिल्ली के लाल किले में ले जाया गया। यह घटना सन् 1857 के मई मास के अंतिम सप्ताह की है। हंसराम के व्यक्तित्व से लाल किले में तैनात अंग्रेज और उनके तहत कार्यरत भारतीय कर्मचारी भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। उसके सुगठित-बलिष्ठ शरीर और सुंदर आकृति से प्रभावित होकर एक अंग्रेज अधिकारी ने हंसराम के समक्ष यह सुझाव रखा कि वह घसियारे के भेष में लाल किले की उस कैद से पलायन कर जाए। किंतु हंसराम के मन का महासागर नहीं डोला और वह बोला, ''मुझे किसी की दया की भीख नहीं चाहिए। अगर अपने देश को विदेशियों की गुलामी से मुक्ति दिलाने का प्रयास करना पाप और अपराध है तो मैंने यह अपराध किया है और इस अपराध के दंड के तौर पर मैं अपने प्राण भी देने को तैयार हूं।'' हंसराम की साध पूरी हुई। उसने अपनी देशभक्ति की पावन चादर पर दया का पात्र बनकर रिहा होने का कलंक नहीं लगने दिया। उसे जब वध-स्तम्भ पर चढ़ाया गया तो उसका मुखमंडल राष्ट्रभक्ति की पावन आभा से प्रदीप्त हो उठा।

- सौजन्य से : सन् सत्तावन के भूले-बिसरे शहीद

गौभक्त लाला हरदेव सहाय

अध्याय 1 :- प्रारम्भिक जीवन

कुछ व्यक्ति जन्म से ही महान होते है, कुछ अपने कार्यों से महान बन जाते हैं, किन्तु कुछ पर महानता थोप दी जाती है। वैदिक शास्त्रों में कहा गया है-

''सः जातो येन जातेन याति वन्श समुन्नितम्।
परिवर्तिने संसारे मृतःको वा न जायते''।।

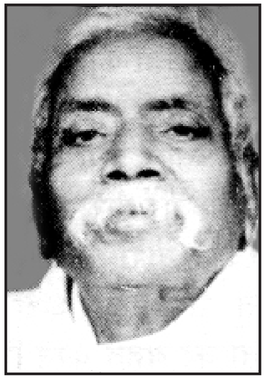

संसार में उसी का जीवन सार्थक है जो दूसरों के लिये जीता है। मानव शरीर केवल उदर पूर्ति करने, सुन्दर तथा मूल्यवान वस्त्राभूषण धारण करने, अपने तथा अपने परिवारजन के लिये आजीविका अर्जित करने, धन, सुख, सुविधा तथा साधन संचित करने, समाज तथा देश में स्वयं को ऊंचा दिखाने का छद्म पूर्ण प्रदर्शन करने तथा स्वयं के लिये तथा अपने परिवार के लिये अपार सम्पत्ति छोडने के लिये नहीं बना है। शरीर तथा जीवन की सार्थकता तथा उपयोगिता, प्रतिष्ठा, ख्याति, गरिमा तथा जीवन्तता इसी में है कि मनुष्य, मनुष्य के लिये जिये तथा सभी क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठकर केवल प्राणी मात्र का हित साधे और अपने जीवन को जगन्नियन्ता परमपिता परमेश्वर की दिव्य देन समझे। हिन्दी की प्रसिद्ध कवि तथा गीतकार श्री गोपाल दास 'नीरज' के शब्दों में-

''यही अपराध मैं हर बार करता हूं।
आदमी हूं, आदमी से प्यार करता हूं।।''

लाला हरदेवसहाय अग्रवाल समाज के एक ऐसे ही सपूत थे जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव सेवा के लिये समर्पित कर दिया। वह अग्रवाल समाज के अमर तथा हिन्दी खड़ी बोली के अपने समय के सर्वाधिक समर्थ, सशक्त, प्रखर, प्रभावोत्पादक तथा समर्पित व्यक्तित्व भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र की भारतीयता की यही पहचान हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के न केवल प्रबल, सशक्त, समर्पित अनुयायी ही थे वरन् उन्होंने जीवन पर्यन्त हिन्दी, हिन्दु, हिन्दुस्तान, गऊ-संवर्धन, गऊ-संरक्षण, उन्नत नस्ल के सांडो तथा गऊओं के प्रजनन, गऊ वध पर कानूनी प्रतिबन्ध, ग्रामीण क्षेत्रों में हिन्दी माध्यम के विद्यालयों की स्थापना, उनके संचालन, प्रबंधन तथा क्रमोन्नयन, हिन्दी के शिक्षण तथा प्रशिक्षण, हिन्दी भाषा के प्रचार तथा प्रसार, पुस्तकालयों तथा वाचनालयों की स्थापना, व्यवसायोन्मुखी शिक्षा एवं शिल्पशालाओं की स्थापना तथा ग्रामोत्थान हेतु रचनात्मक योजनाओं के क्रियान्वयन एवं गऊ माता, गायत्री माता तथा गीता माता एवं वेदों की रक्षा, आराधना, अध्ययन तथा अधीक्षण पर पूर्णतः समर्पित भाव से जीवन भर कार्य किया। उनके समाज सेवा के ऐसे ही अनेक असाधारण कार्यकलापों के

****
कारण लाला हरदेव सहाय जी को अग्रवाल समाज की एक अमर विभूति तथा एक निर्भीक योद्धा के रूप में स्मरण किया जाता है।

लाला हरदेव सहाय जी का जन्म हरियाणा राज्य के हिसार जिले के एक सम्पन्न वैश्य परिवार के सेठ लाला मुसद्दीलाल मित्तल के पुत्र रूप में गांव सातरोद में 26 नवम्बर सन् 1892 ई. में हुआ था। यह गांव दिल्ली से 97 मील दूर पश्चिम राष्ट्रीय राज्य मार्ग नं. 10 पर स्थित है तथा ग्राम सातरोद खुद हिसार शहर से केवल 5 मील की दूरी पर स्थित है। लाला हरदेव सहाय के जन्म के समय सातरोद ग्राम हिसार जिले के महत्वपूर्ण गांवों में से एक था जिसके अधिकतर निवासी हिन्दू थे जो आपस में एक दूसरे से मिलजुल कर रहते थे।

इस ग्राम में हिन्दु, जाट जाति के लोगों की संख्या अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक थी तथा इस जाति के लोग कृषि व्यवसाय करते थे। गांव में बनिया जाति के लोगों की आर्थिक स्थिति अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ थी तथा वे सातरोद एवं निकटवर्ती ग्रामों के कृषक एवं श्रमिक वर्ग को ब्याज पर आर्थिक सहायता तथा ऋण उपलब्ध कराया करते थे। अतः बनिया जाति के लोगों का ग्रामीण क्षेत्र में अधिक प्रभाव, वर्चस्व तथा सम्मान था। लाला हरदेव सहाय के पिता सेठ मुसद्दीलाल मित्तल तथा उनके चारो बड़े भाई लाला हरिकृष्ण, हरस्वरूप, मोतीराम और हरिराम को ग्राम सातरोद तथा हिसार जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ा सम्मान प्राप्त था। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. मदनमोहन जुनेजा द्वारा लिखित 'लाला हरदेव सहाय- एक योद्धा' नामक पुस्तक में इस परिवार की अचल सम्पत्ति का विवेचन करते हुए लिखा गया है कि लाला जी के पिता लाला मुसद्दीलाल मित्तल, जिनका जीवन काल ई. 1871 से 1936 तक रहा, साहुकार का पैतृक व्यवसाय करते थे जिससे उन्होंने लगभग चार हजार एकड़ जमीन प्राप्त कर ली थी। इसके अतिरिक्त ग्राम डाबडा, लाडवा, खेरमपुर, पन्धाल, सातरोद खुर्द छोटा, तथा सातरोद कलां बड़ा में भी इस परिवार की बिस्तेदारी थी। लाला हरदेव सहाय का जन्म उनके पिता की प्रथम पत्नी श्रीमती मुथरी देवी, जो पेटवाड़ गांव की बेटी थी, की कोख से हुआ था। उनकी माता श्रीमती मुथरी देवी अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकी तथा उनकी मृत्यु के पश्चात् लाला हरदेव सहाय के पिता ने चिराय गांव की लक्ष्मीदेवी से दूसरा विवाह कर लिया जिससे उनके मंगल चंद, फूलचंद, तथा रामकुमार तीन पुत्र तथा सरस्वती, बूली देवी एवं नारायणी देवी तीन पुत्रियां उत्पन्न हुई।

लाला मुसद्दीलाल मित्तल तथा उनका परिवार ग्राम सातरोद का आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवार तो था ही उसने लोकोपकार की प्रबल भावना भी थी। यह परिवार गांव में सार्वजनिक उपयोग की सुविधा तथा भवन जैसे चौपाल, कुंआ, तालाब, मन्दिर, धर्मशाला तथा पाठशाला आदि का निर्माण करने के लिये मुक्तहस्त से दान देने के लिये सदैव आगे रहता था। इस पविार का आतिथ्य सत्कार भी प्रसिद्ध था। प्रायः उनके बारा में साधु सन्त आवास किया करते थे तथा उन्हें भोजन आदि की सभी सुविधाएं प्राप्त थी। यह परिवार धर्म परायण, सुसंस्कृत विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा अर्चना में गहरी रूचि रखने वाला हिन्दु धर्म के प्रसिद्ध ग्रंथ श्री रामचरित मानस, श्रीमद् भागवत्, श्रीमद् गीता तथा अन्य धर्म शास्त्रों का

****
निर्मित पाठ कराने वाला धार्मिक परिवार था। यज्ञों, हवनों, धार्मिक अनुष्ठानों, रामलीला, रासलीला, कृष्णलीला एवं ऐतिहासिक धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्र भक्तिपूर्ण नाटकों, कथाओं, सांगों एवं आयोजनों में यह मित्तल अग्रवाल परिवार बढ़-चढ़ कर भाग लेता था।

बालक हरदेव सहाय को प्रारम्भिक शिक्षा पंडित उदमीराम द्वारा प्रदान की गई जिनसे उन्होंने हिन्दी तथा संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। मिडिल कक्षा तक की शिक्षा बालक हरदेव सहाय ने हिसार के एक विद्यालय में प्राप्त की। वह उच्च्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके किन्तु उन्होंने अनौपचारिक रूप से उर्दू, अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

श्री हरदेव सहाय का विवाह किशोरावस्था में भिवानी के सेठ रामचन्द्र वैद्य की सुपुत्री त्रिवेणी के साथ हुआ जिनसे उनके ओंकार चन्द्र, ईश्वर चन्द्र तथा पुरूषोत्तम दास नामक तीन पुत्र तथा विद्या देवी एवं शारदा देवी नामक तीन पुत्रियां उत्पन्न हुई।

प्रारम्भ में लाला हरदेव सहाय ने अपनी तथा अपने परिवार की आजीविका के लिये अपना पैतृक व्यवसाय साहुकारी अपनाया किन्तु कुछ वर्ष बाद तक यह व्यापार करते रहने के पश्चात् वे कलकत्ता जाकर अपने चचेरे भाई इन्द्रराजमल के साथ जूट का व्यापार करने लगे जिसमें उन्होंने दो लाख रूपये का विनियोजन किया, किन्तु वे इस व्यापार में बुरी तरह असफल रहे जिसका कारण उनकी उदार दानवृत्ति एवं राजनीतिक महत्वाकांक्षा मुख्य कारण रहे। केवल दो वर्ष तक कलकत्ता में रहने के बाद वह अपने मूल निवास स्थान ग्राम सातरोद लौट आये।

उन पर महात्मा गांधी, लाला श्यामलाल, सत्याग्रही, हरियाणा केसरी पंडित नेकीराम शर्मा, स्वामी श्रद्धानन्द तथा लाला लाजपतराय राय का प्रभाव पड़ा और वे देश तथा प्रदेश की राजनीति में सक्रीय होने लगे, किन्तु उन्होंने ग्रमीण क्षेत्रों की सेवा शिक्षा, हिन्दी के प्रचार, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसर सृजित करने, गऊ रक्षा, अकाल के दौरान मनुष्यों एवं पशुओं के लिये पेय जल तथा लोगों को रोजगार दिलाने के कार्यों में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। सन् 1921 में महात्मा गांधी के असयोग आन्दोलन के समर्थक में लाला हरदेव सहाय ने एक अत्यन्त ओजस्वी भाषण दिया, जिसमें भारत में अंग्रेजी सरकार की कड़ी आलोचना की गई जिसके कारण उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया तथा उन पर क्षेत्र में विद्रोह भड़काने के अपराध में मुकदमा चला जिसमें उन्हें एक वर्ष के कठोर कारावास के दण्ड से दण्डित किया गया तथा उन्हें दण्ड भुगतने के लिये मियांवाली केन्द्रीय कारागार में बंद किया गया। कारावास के दौरान उनका सम्पक्र तत्कालीन स्वतंत्रता सेनानी तथा आर्य समाज के ख्याति प्राप्त नेता स्वाी श्रद्धानन्द से हुआ जिनके विचारों का उन पर गहरा प्र भाव पड़ा तथा उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द की प्रेरणा से अपना शेष जीवन हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार, ग्रामीण क्षेत्रों में हिन्दी माध्यम के प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना करने, गऊ पालन, गऊ रक्षा, गऊ संवर्द्धन, दुग्ध उत्पादन, पशुओं की नस्ल में सुधार एवं ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परागत कारीगरी करने की दृष्टि से शिल्प प्रशिक्षण कार्यशालाओं, हिन्दी के प्रचार हेतु हिन्दी प्रचारिणी सभा गठित करने एवं जन सामान्य को ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न ग्राम्य विकास योजनाओं जैसे- सड़क, विद्यालय,

****
भवन, चिकित्सालय, धर्मशालाये, गऊशालाये, मन्दिर, प्याऊ, कुएं, पुस्तकालय तथा वाचनालय आदि बनाने एवं इन कार्यों के लिये भारी जन सहयोग जुटा कर महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज्य के स्वप्न को साकार करने के महत्वपूर्ण कार्यों में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया।

अध्याय 2 :- शिक्षा प्रसार

शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में लाला हरदेव सहाय का योगदान सदैव स्वर्ण अक्षरों में अंकित किया जायेगा। अंग्रेजों के शासनकाल में यों तो देश के सभी राज्यों में साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम था किन्तु तात्कालीन पंजाब राज्य जिसमें वर्तमान हरियाणा एवं हिमाचल प्रदेश के क्षेत्र भी सम्मिलित थे, साक्षरता की दर बहुत कम थी। सन् 1881 की जन गणना के अनुसार हिसार जिले में साक्षरता की दर कुल 2 प्रतिशत थी। लाला हरदेव सहाय अपने जिले में शिक्षा की यह दुर्दशा देखकर विचलित हो उठे तथा उन्होंने 12 जुलाई 1912 को अपने ग्राम सातरोद में एक प्राथमिक विद्यालय खोला, जिसका वह निजी साधनों से 2 अक्टूबर 1949 तक संचालन करते रहे। सन् 1928 में यह विद्यालय मिडिल स्कूल हुआ तथा उसके एक वर्ष पश्चात् उस विद्यालय में एक शिल्पशाला भी प्रारम्भ कर दी गई जिसका नाम लाला लाजपतराय शिल्पशाला रखा गया। राष्ट्र पिता महात्मा गांधी के 80वें जन्मदिवस के शुभ अवसर पर दिनांक 2 अक्टूबर 1949 को लालाजी ने इस विद्यालय का प्रबंध तात्कालीन पंजाब सरकार को सौंप दिया। यह विद्यालय न केवल तात्कालीन पंजाब राज्य का एक प्रसिद्ध विद्यालय गिना जाने लगा अपितु शिक्षा के क्षेत्र में भी इस विद्यालय में लालाजी ने अनेक शैक्षिक, व्यवहारिक तथा स्वरोजगारोन्मुखी धार्मिक शिक्षा के सफल प्रयोग किये। शिक्षा का माध्यम हिन्दी था तथा अन्य सभी अनिवार्यविषयों के अतिरिक्त इस विद्यालय में तीसरी कक्षा से रामायण तथा गीता का भी अध्ययन कराया जाता था एवं प्रत्येक शनिवार को एक प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता था जिसमें गीता के श्लोक तथा रामायण की चौपाईयां का पाठ होता था। लाला हरदेव सहाय द्वारा अपने ग्राम सातरोद में स्थापित विद्यालय तथा लाजपतराय शिल्पशाला का देश की जिन महान विभूतियों ने अवलोकन तथा निरीक्षण किया उनमें से कुछ की टिप्पणियां तथा सम्मतियां नीचे उद्‌धृत हैं-

1. नेताजी सुभाष चन्द्र बोस – 29 नवम्बर 1938

''यह शिल्पशाला देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। पं. नेकीराम शर्मा तथा स्कूल प्रबंधकर्त्ताओं ने मुझे भ्रमण कराया। यहां जो कार्य किया जाता है वह उचित रूप से है और लाभदायक है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इस शाला को हमारे बच्चों को शिल्प तथा टेक्निकल शिक्षा देने में पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त हो। मुझे आशा है कि और नये विभाग शीघ्र ही खोले जायेंगे।''

2. लोकनायक जयप्रकाश – 13 जुलाई 1939

''इस स्कूल का निरीक्षण करके और अन्य कार्यवाहियों को देखकर बड़ी प्रसन्नता तथा उत्साह हुआ। स्कूल के प्रबंधकर्त्ता बड़ी सेवा कर रहे हैं, उन्हें पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त हो और अन्य महानुभाव भी उनका अनुसरण करें।''

3. वियोगी हरि – 12 सितम्बर 1940

''ग्राम सेवा का शुद्ध साधन इस संस्था को सही अर्थ में कह सकते हैं। प्रसिद्धि की भूखी यह छोटी सी संस्था नहीं है, यह बात इसके उत्कर्ष के लिए एक शुभ चिह्न है। गांधी जी के आदेश की ओर जाने का जो इस संस्था के संचालकों का सुझाव है, यह सचमुच बड़े हर्ष और सन्तोष का विषय है।''

4. पंडित जवाहरलाल नेहरू – 21 जनवरी 1946

''इस शिल्पशाला को देखकर मुझे खुशी हुई। इस तरह के विद्यालय तो हर जगह होने चाहिए। मैं आशा करता हूं कि यह काम बढ़ेगा और इस इलाके की जनता उससे लाभ उठायेगी।''

5. जी.वी. मावलकर – 4 अप्रैल 1947

''मुझे यह शिल्पशाला देखकर बड़ी खुशी हुई जिसमें देश की उन्नति का बहुत अच्छा काम हो रहा है। इमारत दस्तकारी शिक्षा के लिये देहाती ढंग से बनी हुई है, जो काफी है। यहां की दस्तकारी बड़ी कीमती शिक्षा है जो स्वतंत्रता की नींव है। मैं चाहता हूं कि इस संस्था की तरक्की हो।''

6. सरदार प्रताप सिंह कैरो – 7 दिसम्बर 1947

''मैंने इस आश्रम का श्री शंकर राव देव जी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जनरल सैक्रेटरी के साथ अवलोकन विषयों के अतिरिक्त इस विद्यालय में तीसरी कक्षा से रामायण तथा गीता का भी अध्ययन कराया जाता था एवं प्रत्येक शनिवार को एक प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता था। जिसमें गीता के श्लोक तथा रामायण की चौपाईयां का पाठ होता था।

विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना :-

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा एवं हिन्दी भाषा के प्रचार तथा प्रसार के लिये लालाजी ने सन् 1923 में विद्या प्रचारिणी सभा का गठन किया। जिसने सन् 1923 से 1949 तक अनेक शिक्षण संस्थाओं की ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापना की। इस सभा ने हिसार जिले के 66 ग्रामों में हिन्दी माध्यम के प्राथमिक विद्यालय न केवल स्थापित किये वरन् सन् 1923 से 2 अक्टूबर 1949 तक इस विद्यालयों का संचालन भी किया।

लालाजी के नेतृत्व में विद्या प्रचारिणी सभा द्वारा स्थापित इन विद्यालयों की एक विशेषता यह भी थी कि इनमें शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को आवश्यक शैक्षिक योग्यताएं होने पर अध्यापकों के रिक्त पदों पर नियुक्ति में प्राथमिकता दी जाती थी। इन विद्यालयों में छात्रों में सरलता, पठनशीलता, ईमानदारी, परिश्रम, अपने देश तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था के भाव जाग्रत किये जाते थे। इन विद्यालयों के शिक्षकों एवं छात्रों पर तात्कालीन अंग्रेजी सरकार की पूरी निगरानी रहती थी तथा क्षेत्र तथा देश की राजनीतिक गतिविधियों में निरन्तर भाग लेते रहने, हिन्दी, हिन्दू तथा हिन्दूस्तान की भावना जगाने, महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी निभाने, सन् 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन,

सन् 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह तथा 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में इन विद्यालयों के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के सक्रिय भाग लेने के कारण इन विद्यालयों विशेषकर सातरोद ग्राम में संचालित विद्यालय में पुलिस के छापे पड़ते रहते थे तथा विद्यार्थियों तथा अध्यापकों की राजनीतिक गतिविधियों एवं स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रियता से भाग लेने के कारण उन्हें संदेह की दृष्टि से देखा जाता था तथा कभी-कभी लालाजी के साथ इन विद्यालयों के शिक्षक तथ विद्यार्थी गिरफ्तार भी कर लिये जाते थे।

अध्याय 3 :- अकाल पीड़ितों की सहायता

लाला हरदेव सहाय में ग्रामोत्थान तथा दैविक आपदा पड़ने पर ग्रामीण समुदाय की हर सम्भव सेवा करने की उत्कट भावना थी और उसी कारण जब-जब हिसार जिले में अनावृष्टि एवं सूखें के कारण अकाल पड़ता था। वह गांव-गांव घूमकर पशुओं के लिये चारा, चिकित्सा, मनुष्यों के लिये खाने-पीने का सामान, ओषधियों एवं वस्त्रों तथा कृषकों एवं श्रमिकों के लिये रोजगार की सुविधा जुटाते थे। बड़ी संख्या में राहत कार्य जैसे- सड़क, तालाब, जोहड़ एवं सार्वजनिक उपयोग के भवन बनवाने के लिये राज्य तथा केन्द्र सरकारों एवं स्थानीय प्रशासन पर निरन्तर दबाव बनाए रखते थे। देश के विभिन्न भागों में कार्यरत गैर सरकारी संस्थाओं के प्रभावशाली पदाधिकारियों एवं दानशील सेठों, पूंजीपतियों, उद्यमियों एवं अन्य सम्पन्न व्यक्तियों से आर्थिक सहायता एवं संसाधन जुटाकर अकाल पीड़ितों की सहायता करते थे।

लालाजी के अथक प्रयास, प्रभाव, व्यापक राजनैतिक तथा अधिकारिक सम्पक्र का ही यह परिणाम था की पंजाब तथा हरियाणा राज्य में सिंचाई की सुविधाएं बढ़ाने के लिए भाखड़ा नहर परियोजना बनी तथा उससे यह क्षेत्र हरा-भरा होने लगा। यहां यह उल्लेख करना प्रासांगिक होगा कि 26 सितम्बर 1938 को लाला हरदेव सहाय जी पं. नेकीराम शर्मा के साथ हरिजन कॉलोनी दिल्ली में महात्मा गांधी से मिले तथा उन्होंने अकाल पीड़ितों की हर सम्भव सहायता करने का आश्वासन दिया। उन्होंने सेठ घनश्याम दास बिरला तथा बाबू बसन्त लाल मुरारका से भी सम्पक्र स्थापित कर अकाल पीड़ितों के लिये नकद राशी तथा आवश्यक सामग्री जुटाई।

इस प्रकार लाला हरदेव सहाय जी ने पूर्ण समपर्ण भाव से हिसार जिले में अकाल पीड़ितों की सहायता के लिये दिन-रात कार्य करके न केवल अकाल की विभीषिका से जिला प्रशासन व सम्भागीय प्रशासन, राज्य सरकार, केन्द्र सरकार तथा राजनीतिज्ञों तथा समाज सुधाराकों, दानवीर सेठों तथा लोक कल्याण के कार्यों में लगी अनेक गैर सरकारी संस्थाओं को अवगत कराया वरन् उनके प्रयास से क्षेत्र में अनेक अकाल राहत कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हुए। हरियाणा राज्य लालाजी के इस महान योगदान को कभी नहीं भुला सकता।

अध्याय 4 :- वनस्पति घी का विरोध

लाला हरदेवसहाय वनस्पति घी को मीठा जहर कहते थे। उनका यह विचार था कि

वनस्पति घी मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक है तथा इससे गम्भीर उदर, स्नायु तथा हृदय रोग उत्पन्न होते हैं। उनका यह भी विचार था कि वनस्पति घी के उत्पादन एवं सेवन से भारतवर्ष की ग्रामीण अर्थव्यवस्था, जो मुख्यतः कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है, पर भी गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि वनस्पति घी, शुद्ध देशी घी की अपेक्षा कहीं अधिक सस्ता होने के कारण पशुपालकों को इतनी कम कीमत पर देशी घी का बेचना सम्भव नहीं हो पाता है तथा वे बाजारी प्रतिस्पर्द्धा में वनस्पति घी के निर्माताओं तथा व्यापारियों से पिछड़ जाते हैं और इस प्रकार उनके लिए दुधारू पशुओं का पालन-पोषण, देख-रेख तथा संधारण आर्थिक दृष्टि से भार प्रतीत होने लगता है।

लालाजी ने वनस्पति का विरोध करने के लिए अखिल भारतीय वनस्पति विरोधी समिति की स्थापना की तथा वनस्पति के विरूद्ध राष्ट्र व्यापी आन्दोलन चलाया। उन्होंने वनस्पति के विरोध में 1946-47 में 2 पुस्तकें- 'मीठा जहर' और 'देश के दुश्मन' नामक पुस्तकें भी लिखी। लालाजी चाहते थे कि यदि वनस्पति के उत्पादन एवं उपभोग पर पूर्ण प्रतिबंध न भी लग पाए तो उसमें कोई ना कोई ऐसा रंग अवश्य मिला दिया जाए, जिससे उसकी सरलता से पहचान हो जाए तथा नागरिकों को उसके सेवन से बचने के लिए शिक्षित किया जा सके।

लाला हरदेवसहायजी एक महान चिन्तक, तत्वदृष्टा, संघर्षशील व्यक्तित्व एवं दृढ़ निश्चयी विचारवान पुरूष थे, जो सदैव क्षुद्र स्वार्थ एवं व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर समग्र देशवासियों के हित में चिन्तन करते थे तथा आन्दोलन चलाते थे। वनस्पति का विरोध एवं उसके उत्पादन, विक्रय, प्रचार-प्रसार, एवं उपभोग पर प्रतिबंध लगाने का उनका आन्दोलन मानव कल्याण की इसी भावना से प्रेरित था।

अध्याय 5 :- समर्पित गऊभक्त

लाला हरदेवसहाय गऊमाता, गायत्री माता तथा गीता माता के अनन्य अनुयायी भक्त तथा प्रबल समर्थक थे। वे गऊ को देश की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का प्रमुख आधार मानते थे। अधिकांश भारतवासियों की भांति लालाजी का यह विश्वास था कि गऊ हमारे अर्थव्यवस्था की प्रमुख धुरी है। जिस पर देश की सम्पूर्ण कृषि व्यवस्था तथा श्वेत क्रान्ति की धारणा आधारित है। मानव जीवन के शैशव से लेकर मृत्यु तक उसके शरीर का पोषण एवं स्वास्थ्यवर्धन गाय के दूध से होता है। कोई भी धार्मिक अनुष्ठान गाय के दूध, दही, घी, गोबर, मूत्र आदि पंचगव्यों के बिना पूर्ण नहीं होता। गाय के बछड़े हल जोतने, कृषि उत्पादन एवं अन्य सामान का परिवहन करने एवं सांड के रूप में गायों की संख्या में वृद्धि करने के काम आते है। गाय में भारतवासी तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं का वास मानते हैं एवं उसे सभी सुख-सुविधाओं, विभूतियों, गुणों एवं कामनाओं की पूर्ति का साधन मानते हैं। भारतीयों के अनुसार गाय न केवल हमारे आर्थिक उन्नति का आधार है, वरन् उससे हमारी गहन धार्मिक भावना भी जुड़ी है। इसीलिए भारतीय गाय को कामधेनु की संज्ञा से विभूषित करते है तथा

उसका विभिन्न अवसरों पर आराधन किया जाता है। गऊबद्ध हिन्दुओं की दृष्टि में एक जघन्य अपराध है तथा गऊओं की बढ़ती हत्या से हिन्दू स्वावलम्बी अत्यधिक चिन्तित, आन्दोलित एवं उद्वेलित हो उठते हैं। सतत् प्रयास, संघर्ष, व्यापक जन सम्पक्र एवं प्रभाव का यह परिणाम हुआ कि देश की संसद के समक्ष गऊ हत्या पर प्रतिबंध लगाने की दृष्टि में एक बिल भी प्रस्तुत हुआ किन्तु तात्कालीन कांग्रेस पार्टी एवं विशेषतः पं. जवाहरलाल नेहरू का समर्थन प्राप्त न होने के कारण करोड़ों देशवासियों की भावनाओं से जुड़ा यह महत्वपूर्ण विधेयक संसद में पारित नहीं हो सका। लालाजी ने राजनेताओं के इस रवैये से व्यथित होकर 'भारत दुर्दशा' नामक एक पुस्तक भी लिखी। जिसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू को गऊहत्या पर प्रतिबंध न लगाने के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी ठहराया गया। उनकी इस पुस्तक से आक्रोशित होकर दिल्ली की प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने उनके विरूद्ध देश में साम्प्रदायिक सद्भाव दूषित करने, मुस्लिम सम्प्रदाय के विरूद्ध भावनाएं भड़काने, केन्द्रिय तथा राज्य सरकारों के विरूद्ध षड्यंत्र रचने एवं साम्प्रदायिक भावनाएं भड़का कर देश में विभाजन का विषवमन फैलाने का आरोप लगाकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया तथा उन्हें बन्दीगृह में डाल दिया और वे वहाँ वर्षों तक बन्दी रहे।

अन्ततः 30 सितम्बर, 1962, रविवार प्रातः 3 बजकर 10 मिनट पर उनका स्वर्गवास हो गया और इस प्रकार अग्रवाल समाज का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश का एक ज्वाजल्यमान दीपक सदैव के लिए बुझ गया, किन्तु जो अमर प्रकाश यह दीपक छोड़ गया है, वह सदैव देशवासियों को आलोकित करता रहेगा, लालाजी ने गायों का ईलाज, गऊ संकट निवारण, गाय तथा भैंस, मीठा जहर, देश के दुश्मन, गऊबद्ध निषेध, गाय ही क्यों?, कांग्रेस और गाय, गौरक्षा ही राष्ट्र रक्षा, गाय बनाम नेहरू, लोकसभा में गाय, नेहरू राज के नौ वर्ष, गाय कैसे बचे?, कटारपुर गौर रक्षा बलिदान काण्ड, आर्यों के दरबार में गऊ माता की पुकार, भारत मां की दुर्दशा क्यों, गऊ चिकित्सा, गऊबद्ध का हेतु, सबसे बड़ा राजद्रोह, गऊ हत्या, कलकत्ते का कलंक, गायों की आवश्यकता, गाय पंजाबियों का सहारा, दूध की नदी एवं मां के आंसू आदि अनेक पुस्तकें लिखी जो उनकी गऊ माता के प्रति अनन्य भक्ति तथा गऊ रक्षा, गऊ संरक्षण, गऊ संवर्द्धन तथा गऊ हत्या की बढ़ती प्रवृत्ति पर सरकार द्वारा कानूनी अंकुश न लगाने की चिंता को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करती है। लालाजी का हमारी अर्थव्यवस्था की धुरी गाय के प्रति न्याय की दृष्टि से किया गया योगदान, देश कभी विस्मृत नहीं कर सकता एवं वैश्य समाज का वर्णव्यवस्था के अनुसार प्रमुख धन कृषि तथा पशुपालन है तथा पशुपालन में भी हमारे समाज का सारा बल गऊरक्षा तथा गऊ संवर्द्धन पर हैं। इस दिशा में लाला हरदेवसहाय जी के योगदान पर केवल अग्रवाल समाज ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतवासी गर्व कर सकते हैं।

– रमेशचन्द गुप्त

जगतसेठ रामजीदास गुड़वाला

उद्योग व व्यापार से धन तो बहुत लोग एकत्र कर लेते हैं परन्तु ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं जो करोड़ों रूपये की धनराशि देश के हित में यह जानते हुए भी लगा दें कि इसका परिणाम फांसी पर लटकाए जाना हो सकता है। दिल्ली के सेठ रामजीदास गुड़वाला ऐसे ही महान देशभक्त थे जिन्होंने सन् 1857 की क्रांति के समय क्रांतिकारियों को करोड़ों रूपये की धनराशि और अपार सम्पत्ति मदद में दी ताकि देश की जनता ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्त होकर आजादी और आत्म-सम्मान के वातावरण में सांस ले सके।

सेठ रामजीदास गुड़वाला दिल्ली के सुप्रसिद्ध व्यापारी तथा प्रतिष्ठित नागरिक थे। मुगल सम्राट बादशाह उनका बहुत सम्मान करते थे। उन्हें सरकार ने कई उपाधियां भी दी थीं। दरबार में बैठने के लिए उनके लिए विशेष आसन की व्यवस्था की गई थी। उनके निवास स्थान पर सुरक्षा की दृष्टि से सैनिकों की विशेष व्यवस्था की गई थी। दीवाली के शुभ पर्व पर सेठ रामजीदास अपने घर पर विशेष जश्न किया करते थे जिसमें मुगल सम्राट स्वयं उपस्थित होते थे। इस अवसर पर सेठजी सम्राट को दो लाख अशर्फियों का नज़राना भी भेंट करते थे। सेठजी के हृदय में देशप्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्नीसवीं सदी के मध्य में एक ओर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत के बहुत बड़े भूभाग पर अधिकार कर लिया था दूसरी ओर मुगल साम्राज्य का प्रभाव सिकुड़ कर दिल्ली के लाल किले की चारदिवारी तक ही सीमित रह गया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारी भारत की जनता का निर्मम शोषण कर रहे थे। जनता अंग्रेजों के निरंकुश शासन तथा उनके अहंकार और जोर-जुल्म से तंग आ चुकी थी। दिल्ली को भी शोषण और अपमान की जिंदगी जीनी पड़ रही थी। इससे सेठ रामजीदास के हृदय में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध बहुत आक्रोश था। वह चाहते थे कि देश की जनता उठे और अंग्रेजों को मार भगाए। इसके लिए उनके मस्तिष्क में गुप्तचर व सैनिक संगठन बनाने की योजनाएं भी थीं।

एक ओर यह स्थिति थी तो दूसरी ओर मुगल शासन शाक्तिहीन हो चुका था। सम्राट बहादुरशाह जफर के दरबार में अनेक स्वार्थी और अय्याश लोग रहते थे। वे सब आपस में लड़ते और एक-दूसरे के विरूद्ध षड्यंत्र करते थे। सेठजी इस स्थिति से बहुत चिंतित थे। उनका विचार था कि मुगल शासन की स्थिति सुदृढ़ कर उसे स्वाधीनता संग्राम का आधार बनाया जाए। इसी ख्याल में सेठजी ने सेना को सुदृढ़ करने के लिए सम्राट बहादुरशाह जफर को कई बार करोड़ों रूपये दिए। उन्होंने स्वयं गुप्तचर विभाग का गठन किया था जो अंग्रेजों और उनके पिट्ठू भारतीयों की गतिविधियों की जानकारी उन्हें देता था।

सन् 1857 की क्रांति से सेठ रामजीदास गुड़वाला बहुत उत्साहित हुए। उस समय धन की बहुत आवश्यकता थी क्योंकि बाहर से हजारों क्रातिकारी सैनिकों के दिल्ली आ जाने के कारण खर्च बढ़ गया था। इसके अतिरिक्त अस्त्र-शस्त्र तथा गोला-बारूद तैयार करने के लिए भी धन की काफी आवश्यकता थी। क्रांति की अवधि में भी सेठजी में क्रांतिकारी कार्यों के लिए दो बार करोड़ों रूपयों की धनराशि दान के रूप में दी। इसके अतिरिक्त उन्होंने सम्राट बहादुरशाह जफर को करोड़ों रूपये के ऋण दिए। यही नहीं बल्कि क्रांतिकारी सेनाओं की

****

रसद के लिए उनका भंडार सदा खुला रहता था। अंग्रेज अधिकारी भी सेठजी के प्रभाव से परिचित थे। उन्होंने उनको अपने पक्ष में करने और उनसे मदद लेने की भरपूर कोशिश की परन्तु वह इसके लिए राजी नहीं हुए।

दिल्ली पर क्रांतिकारी सेनाओं का लगभग साढ़े चार माह तक अधिकार रहा। सेठ रामजीदास ने इस स्वतंत्रता संग्राम में भामाशाह की भूमिका अदा की, परन्तु जींद नरेश की सेना और महाराज पटियाला की सिख सेनाओं के दिल्ली में अंग्रेजों की मदद के लिए आ जाने के बाद स्थिति बदल गई। ब्रिटिश सेनाओं ने दिल्ली का घेरा और सुदृढ़ कर दिया। अंग्रेज सेनाएं 14 सितम्बर 1857 को कश्मीरी दरवाजे की रक्षा-पंक्ति तोड़ कर नगर में प्रवेश कर गई और घमासान युद्ध के बाद लाल किले तक पहुंच गई। ऐसी स्थिति में कुछ क्रांतिकारी सैनिक दिल्ली छोड़कर चले गए। परन्तु अन्य सैनिकों ने 14 सितम्बर से 24 सितम्बर तक ब्रिटिश सेनाओं के साथ डटकर लोहा लिया। कुछ समय पश्चात् सैन्यशक्ति संतुलन अंग्रेजों के पक्ष में हो गया। ऐसी स्थिति में सेनापति बख्त खां ने बहादुरशाह जफर को दिल्ली से बाहर जाकर स्वतंत्रता संग्राम को जारी रखने की सलाह दीं। बख्त खां की सलाह न मान कर अंग्रेजों के पिट्ठू मिर्जा इलाहीबख्श की सलाह मान कर सम्राट हुमायूं के मकबरे में चले गये। इलाहीबख्श ने भेद खोल कर बादशाह को पकड़वा दिया। कैप्टन हडसन ने बहादुरशाह जफर को गिरफ्तार करने के बाद उनके तीनों शाहजादों के सिर काट कर बादशाह के समक्ष पेश किए।

इस प्रकार दिल्ली पर अंग्रेजों का नियंत्रण हो गया। इसके पश्चात् दिल्ली में भयंकर नरसंहार और लूटमार शुरू हो गई। इस हत्याकाण्ड का वर्णन करते हुए लार्ड एल्फिन्स्टन और जान लारेन्स ने लिखा है कि ''दिल्ली का घेरा उठा लिए जाने के उपरान्त हमारी सेनाओं ने जो क्रूरता प्रदर्शित की और अत्याचार किए उनको देखकर तो वास्तव में दिल दहलने लगता है। शत्रु-मित्र में कोई भेद न करते हुए प्रचण्ड प्रतिशोध की अग्नि दहका दी गई। लूटमार करने में तो हमारी सेनाओं ने नादिरशाह को भी पीछे छोड़ दिया। जनरल आउटरम तो सम्पूर्ण दिल्ली को ही जला देने के लिए कह रहा था। दिल्ली के चांदनी चौक में अनेक क्रांतिकारियों को सरेआम फांसी पर लटकाया गया। इनमें बल्लभगढ़ के राजा नाहरसिंह, झज्जर के नवाब अब्दुर्रहमान खां, फर्रूखनगर के नवाब अहमद अली आदि शामिल थे। इतिहासकार जान केय के शब्दों में ''आठ छकड़े इस काम के लिए तैनात थे कि गलियों और बाजारों में वृक्षों से लटके शवों को उतार कर दूर फेंक आयें।'' लोहारू के नवाब के अनुसार दिल्ली में 26,000 व्यक्ति मारे गए। सैकड़ों देशभक्तों को आजीवन कारावास की सजा दी गई। 1857 की क्रांति के समय दिल्ली में अनेक समाचार-पत्र प्रकाशित होते थे। इनमें से अनेक संपादकों और पत्रकारों ने क्रांति का भरपूर समर्थन किया था। इन क्रांतिवीर पत्रकारों और कई साहित्यकारों को भी फांसियों दी गई।। ऐसी स्थिति में बहादुरशाह जफर और क्रांतिकारियों को करोड़ों रूपयों की धनराशि और रसद की सहायता देने वाले सेठ रामजीदास को अंग्रेज कैसे छोड़ते? सरेआम कुत्ते छोड़कर पहले तो उन्हें कुत्तों से नुचवाया गया और फिर घायलावस्था में चांदनी चौक में फांसी पर लटका दिया। इस प्रकार जगतसेठ रामजीदास मातृभूति की स्वाधीनता के लिए शहीद हो गए। अंग्रेजों ने सेठ रामजीदास की करोड़ों रूपयों की असीम सम्पत्ति भी जब्त कर ली और गद्दारों को पुरस्कृत किया।

- डॉ. विश्वमित्र उपाध्याय

सेठ मिर्जामल पोद्दार

सेठ मिर्जामल पोद्दार अग्रसमाज के उन देदीप्यमान रत्नों में थे, जिन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा भारत के कोने-कोने में अपने वाणिज्य-व्यवसाय का प्रसार कर इस समाज की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। उस समय जबकि भारत में संचार एवं यातायात की आधुनिक सुविधाओं का अभाव था, व्यापारिक मार्ग असुरक्षित थे, अपने देश के कोने-कोने में सुदूर अपनी व्यापारिक कोठियां एवं प्रतिष्ठान स्थापित किये और व्यापार का प्रसार किया।

उस समय बीकानेर राज्य में उनकी बराबरी का अन्य कोई साहूकार न था। उनका व्यवसाय काश्मीर से लेकर मालवा तथा मुलतान से लेकर कलकत्ता तक फैला हुआ था। उनके व्यावसायिक प्रतिष्ठान हिसार, हांसी, रोहतक, अम्बाला, लुधियाना, ग्वालियर आदि विविध स्थानों में फैले हुए थे। उनका मुख्य व्यवसाय बैकिंग, बीमा, ठेके और वस्तुओं के आयात-निर्यात का था। उनके यहां हुण्डी चिट्‌ठी का काम भी बहुत होता था। उनकी दिल्ली स्थित फर्म मिर्जामल मगनीराम के बही खाता से उस समय लाखों-रूपयों की हुण्डियों के जमा-खर्च मिलते हैं। उनके द्वारा काश्मीरी शालों का मुम्बई के बंदरगाह से इंग्लैण्ड निर्यात के भी उल्लेख मिलते हैं। चतुर्भुज जिंदाराम, मिर्जामल मगनीराम, जौहरीमल रामलाल आदि इनकी सुप्रसिद्ध व्यावसायी फर्में थीं।

श्री मिर्जामल पोद्दार का जन्म वि.सं. 1848 में चुरू में हुआ। आप सेठ चतुर्भुज के पौत्र एवं श्री जिंदाराम के छोटे पुत्र थे। इनके पूर्वज श्री चतुर्भुज की बीमा-व्यवसाय में बहुत प्रसिद्धि थी और आपके व्यापारिक कौशल एवं प्रगति के संबंध में अनेक किवदंतियां प्रचलित हैं। ऐसा कहा जाता है कि आपको एक यती ने व्यवसाय के लिए बाहर जाने का शुभ मुहूर्त्त बताया। आप उस शुभ मुहूर्त में घर से रवाना हुए। उस समय राह में आपको एक सर्प फन फैलाये हुए दृष्टिगोचर हुआ, जिसे देख सेठ चुतुर्भुज बहुत डर गए और वापिस यति के पास आकर सारा वृतान्त सुनाया। यती ने सारी बातें सुनकर कहा, तुमने वापस लौटकर बहुत बड़ी-गलती की यदि उस मुहुर्त्त में चले जाते तो तुम कहीं के छत्रपति होते, मगर यदि अब भी तुम इसी समय चले जाओ तो तुम्हें छत्रपति के समान ही सम्मान प्राप्त होगा। सेठ चतुर्भुज ने यति के आदेशानुसार व्यापार के लिए बाहर प्रस्थान किया और पर्याप्त मात्रा में द्रव्य एवं यशार्जन किया। भटिण्डा में उस समय छोटे-छोटे राज्य व ठिकानेदार थे। हर एक राजा व ठिकानेदार इस बात के लिए उत्सुक रहता था कि उसके यहां सम्पन्न लोग आकर बसे और वे राज्य की आर्थिक समृद्धि में योगदान करें। सं. 1840 के लगभग सीकर दरबार ने अपने राज्य में चुरू के समान एक नवीन शहर बसाने का आयोजन किया। उन्होंने श्री चतुर्भुज

और उनके परिवार को आमंत्रित किया कि वे राज्य में आकर बसें। परिणामस्वरूप सेठ जी और उनका परिवार सीकर में नोसा ढाणी नामक ग्राम में जाकर बस गया। यही ढाणी कालान्तर में रामगढ़ सेठों के नाम से प्रसिद्ध हुई और यहां के सेठों ने व्यापार-व्यवसाय-दान-उदारता के क्षेत्र में नये-नये प्रतिमान स्थापित किए।

जिस प्रकार सीकर नरेश के साथ उनके मधुर संबंध थे, उसी प्रकार बीकानेर के महाराजा के साथ भी थे। बीकानेर महाराजा सूरतसिंह के आह्वान पर वे बाद में चुरू आ गये और उनका परिवार वहां बस गया।

उस समय मिर्जामल व्यसक हो चुके थे। बीकानेर राज्य में उनकी विशेष प्रतिष्ठा थी। वे अपने परिवार की परम्परा के विरूद्ध स्वयं कारोबार संभालते थे और व्यवसाय हेतु दूर-दूर की यात्राएं करते थे। उस समय लूटमार होती रहती थी किन्तु आप इन सब कठिनाइयों से विमुख नहीं हुए और अंतिम समय तक यात्रा करते रहे।

सेठ मिर्जामल के बड़े-बड़े राजाओं से संबंध थे। आवश्यकता के समय वे राजाओं को ऋण एवं सहायता उपलब्ध कराते थे। सन् 1882 में बीकानेर महाराजा को लाखों रूपयों की सहायता उपलब्ध कराई थी। बहियों एवं अन्य कागजातों से यह पता चलता है कि सन् 1827 में उन्होंने बीकानेर राज्य को चार लाख रूपये का ऋण दिया और बाद में भी उन्होंने समय-समय पर राज्य की सहायता की थी। परिणामस्वरूप महाराजा सूरतसिंह उनसे बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने सेठ मिर्जामल को एक सिरोपा और दुशाला भेंट किया था। उनके सम्मान का अनुमान बीकानेर राज्य के निम्न रूक्के से लगाया जा सकता है, जो बीकानेर नरेश ने उन्हें सन् 1882 में प्रदान किया था। इस रूक्के का सारांश है-

'सेठ मिर्जामल पोद्दार ने राज्य की बहुमूल्य सेवा की है। चुरू के बागी ठाकुर सूजा को मोजे से बाहर निकालने में सेठ मिर्जामल का सफल प्रयत्न रहा है। उक्त सेठ ने उजड़े गांवों को बसाकर बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। सेठ मिर्जामल पोद्दार और उनके खानदान वाले न्याय विभाग और दूसरे विभागों की सब प्रकार की सजाओं से मुक्त किये जाते हैं। बीकानेर सरकार इनके तथा इनके खानदान वालों के साथ सदाशयतापूर्ण व्यवहार करेगी। इनके शत्रु, चुगलखोर आदि व्यक्तियों द्वारा उनके खिलाफ जो शिकायत आयेगी, उस पर बीकानेर सरकार कुछ भी ध्यान नहीं देगी।

इन्हें तथा इनके खानदान वालों को तीन खून तक गुनाह माफ है। इनके खिलाफ जो भी शिकायतें आयेगी उनका निपटारा वे स्वयं करेंगे। इनके कर्जदारों से कर्ज वसूल करने के लिए राज्य की कचहरियों को सख्त हिदायत दे दी गई है कि वे सरकार की तरफ से इनकी एक-एक पाई वसूल करने की व्यवस्था करें। इनके सम्मान में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होगा।

इनके अतिरिक्त मिर्जामल को राज्य की ओर से अनेक सुविधाएं अलग से प्राप्त थी। उन्हें यह विशेषाधिकार प्राप्त था कि उनकी हवेली में यदि कोई अपराधी शरण प्राप्त कर लेगा तो उसे पकड़ा नहीं जायेगा। यदि उनके व्यापारिक प्रतिष्ठान में काम करने वाला कोई मुनीम या गुमाश्ता रूपयों के मामलें में बईमानी करेगा तो राज्य उससे सेठ को रकम दिलवाएगा और मुनीम-गुमाश्तों की उनके विरूद्ध कोई बात नहीं सुनी जाएगी। खेतड़ी तथा सीकर नरेशों से भी उनके लेनदेन के संबंध थे।

सेठ मिर्जामील पोद्दार पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह के विशेष कृपापात्र तथा विश्वसनीय व्यक्ति थे। वे उनकी विलक्षण बुद्धि तथा अनुभव से बहुत प्रभावित थे। वे सेठजी को अपने राज्य की शक्ति समझते थे और राजदरबार में उनका विशेष सम्मान था। महाराजा की ओर से उन्हें अनेक प्रकार की छूटें मिली हुई थी। कश्मीर व मुलतान की दुकानों में उन्हें महसूल में 25 प्रतिशत की छूट दी गई। महाराज की ओर से उन्हें समय-समय पर विभिन्न वस्तुओं की आपूर्ति के आदेश मिलते रहते थे। राज्य को जब भी पैसे की आवश्यकता होती मिर्जामल उसे प्रदान करते। महाराजा रणजीतसिंह के साथ उनके संबंधों का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सन् 1838 में लाहौर के शालीमार बाग में महाराजा ने प्रसन्न होकर उन्हें मोतियों का कण्ठहार भेंट किया था और अपने पौत्र नौनिहाल सिंह की शादी में सम्मिलित होने के लिए उन्हें विशेष रूप से निमंत्रित किया।

पंजाब की अन्य रियासतों-पटियाला, नाभा, जींद, कपूरथला, नाहन आदि के राजाओं के साथ भी उनके व्यापारिक संबंध थे एवं राज्य के बड़े-बड़े शहरों-लाहौर, अम्बाला, अमृतसर, पटियाला, नाभा, शिमला, भिवानी, रोहतक आदि में उनकी व्यापारिक कोठियां थीं।

सेठजी के व्यापारिक कौशल को देखते हुए अंग्रेजों ने बार-बार उनसे आग्रह किया कि वे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन रियासतों में आकर अपना कारोबार स्थापित करें। अजमेर में व्यापार स्थापित करने के लिए भी इन्हें पर्याप्त सुविधाएं दी गई। 19वी शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेज सरकार ने भारतीय राज्य के व्यापारियों को अंग्रेजी वाणिज्य व्यापार फैलाने के लिए जो संरक्षण देने की नीति अपनाई, उसका पूरा-पूरा लाभ मिर्जामल ने उठाया। उस समय के पोतेदार संग्रह के कागजों से पता चलता है कि सेठ मिर्जामल रोहतक व रिवाड़ी जिलों के खजांची रहे। उस समय के अनेक परवानों से पता चलता है कि अंग्रेजों की ओर से मिर्जामल को राहदारी संबंधी अनेक सुविधाएं प्रदान की गई थी। एक अंग्रेज अधिकारी चार्ल्स थियोफिल्स मेटकार्फ ने अपने अधीन थानेदार तथा मार्गरक्षक चौकियों को निर्देश दिया था कि वे सेठ मिर्जामल के माल को अपनी-अपनी हदों में सुरक्षित तथा सावधानी से आगे पहुंचाये। उन्होंने ईस्ट

इण्डिया कम्पनी के कृपापात्र ब्रिटिश पदाधिकारियों से इस आशय के भी अधिकार प्राप्त कर लिये थे कि वे अपने गुमाश्तों से सम्बन्धित मामलों का निपटारा स्वयं करेंगे और सरकार को उसमें हस्तक्षेप का अधिकार प्राप्त न होगा। राह में माल की चोरी या लूट हो जाने पर उसकी बरामदगी का भार भी अंग्रेज अधिकारियों पर डाला गया था। सेठ मिर्जामल पोद्दार किसी भी स्थान पर व्यापार प्रारम्भ करने से पूर्व राज्य से शर्तें तय कर लेते थे और राज्य को उनकी प्रतिभा के समक्ष झुकना पड़ता था।

सेठ मिर्जामल ने इस प्रकार व्यापार-व्यवसाय का प्रसार कर अपने समय में पर्याप्त प्रतिष्ठा अर्जित की। उनकी मृत्यु 1848 ई. में नाभा में हुई। उन्होंने अपने जीवन में लोकोपकार के भी अनेक कार्य किए। कस्बा रोहतक में कुंआ खुदवाया तथा बाग लगाने हेतु पांच बीघा जमीन दान में दी। व्यापारिक तथा राजकीय प्रतिष्ठा भी पर्याप्त थी। उन्होंने अपने जीवन में अनेक दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह किया। अनेक राजा-रईसों ने भी उन्हें प्रसन्न हो विभिन्न प्राचीन ग्रंथ प्रदान किए। महाराजा रणजीतसिंह द्वारा इनको प्रसिद्ध कवि फिरदौरसी द्वारा लिखित शाहनामा भेंट किया गया।

उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्रों- गुरूमुखराय पोद्दार एवं महादयाल पोद्दार का भी राज्य में विशेष सम्मान बना रहा। बीकानेर राज्य का राजा जब भी चुरू आते, श्री गुरूमुखराय की हवेली के सामने उनके हाथी को रोका जाता जो उनका सम्मान बढ़ाता। श्री मिर्जामल के भाई नानगराम के पुत्र- भगतराम मगनीराम ने भी पर्याप्त प्रसिद्धि पाई। इनके परिवारजनों द्वारा मथुरा में राधागोविंदजी का मंदिर, रामगढ़ में श्री बद्रीनारायण मंदिर, यात्री धर्मशाला आदि का निर्माण भी कराया गया।

निःसन्देह सेठ मिर्जामल पोद्दार मध्यकाल के दैदीप्यमान अग्रवाल रत्नों में थे। उन्होंने अपनी साख एवं प्रतिभा द्वारा अग्रवाल समाज के गौरव को बढ़ाया। उन जैसे विलक्षण बुद्धि सम्पन्न व्यवसायियों के कारण ही अग्रसमाज की गणना श्रेष्ठ व्यवसायियों में होती है।

- डॉ. चम्पालाल गुप्त

रामजस शिक्षण संस्थान

कहते हैं कि प्राचीन समय में महर्षि दधीचि और राजा बलि हुए, जिन्होंने अपना सर्वस्व अर्पित कर दान धर्म की ऐसी उत्कृष्ट परम्परा प्रारम्भ की, जिसके कारण हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर आज भी उनके नाम अमर हैं। भले ही आज उनके वंश को कोई न जानता हो किन्तु उनका नाम इतिहास के काल पट्ट पर आज भी अमिट है, कल भी रहेगा और शताब्दियां व्यतीत हो जाने पर भी उनके त्याग और बलिदान को यह गाथा मानव-मात्र के लिए प्रेरणास्रोत बनी रहेगी।

इसी उज्ज्वल दान-परम्परा के प्रतीक थे -दिल्ली के राय केदारनाथ, जिन्होंने अपने पिता की स्मृति को अमर बनाए रखने के लिए रामजस शिक्षण संस्थान की स्थापना की।

आपका जन्म सन् 1859 में शाहदरा (दिल्ली) के एक कुलीन अग्रवाल परिवार में लाला रामजस के यहां हुआ। आपके पिता श्री आपसे बड़ा स्नेह रखते थे। आपने अपनी प्रतिभा एवं लग्न से 1882 में एम.ए की परीक्षा उतीर्ण की तथा शिक्षा विभाग में अध्यापक, सहायक शिक्षा आयुक्त जैसे पदों पर आसीन हुए। आपने इन पदों पर रहते हुए अनेक लोकोपकारी कार्य किए । आपके दो पुत्र और तीन कन्याएं उत्पन्न हुऐ परन्तु वे दुर्भाग्यवश सभी काल के गाल में समा गए। जब उनके अंतिम पुत्र का देहावसान हुआ तो उनके पिता लाला रामजस बिलख-बिलख क्रंदन करने लगे तथा दु:ख विह्वल एवं कातर होकर कहने लगे कि हे परमात्मा! तूने हमारा नाम लेवा और पानी देवा भी न छोड़ा। अरे केदारनाथ! हमारे तो कुटुम्ब का अंतिम दीपक भी हमेशा के लिए बुझ गया। भला हमें कौन याद करेगा ?

केदार नाथ ने अपने दु:ख से कातर पिता को धैर्य बंधवाया और कहा-पिताजी ! आप चिंता मत करें ! आपका नाम अमर करने के लिए मुझसे हजारों पुत्र-पुत्रियां होंगे, जो आपके नाम तथा कुल का दीपक कभी बुझने न देंगे।

बस तभी से केदारनाथ अपने पिता के सामने की गई भीष्म प्रतिज्ञा को पूरा करने की चिंता में जुट गए तथा 1912 में उन्होंने अपने पिताजी की स्मृति बनाए रखने के लिए कूचा घासीराम, दिल्ली में रामजस हाई स्कूल की स्थापना की । इस विद्यालय को आदर्श शिक्षण संस्थान का रूप देने के लिए उन्होंने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। परिणामस्वरूप छात्र संख्या में भारी वृद्धि होने से शीघ्र ही अंसारी रोड़, दरियागंज में रामजस हाई स्कूल नं-2 की स्थापना करनी पड़ी। आपके सतत प्रयत्नों से जब वे विद्यालय चल निकले तो आपने रामजस कॉलेज स्थापित करने की योजना बनाई।

1916 में आपने सराय रोहिल्ला के निकट काला पहाड़ (आनन्द पर्वत) नामक स्थान पर कॉलेज स्थापनार्थ 367 एकड़ जमीन ली । उस समय वह जमीन उबड़-खाबड़ थी और किसी को भी यह विश्वास नहीं था कि इस सुनसान वीरान स्थान पर स्थापित किया जाने वाला यह संस्थान एक दिन राजधानी दिल्ली के श्रेष्ठतम संस्थान का रूप धारण कर लेगा। दिसम्बर 1918 में आपने संस्थान के व्यवस्थित संचालन के लिए एक फाउण्डेशन का गठन कर उसके नाम अपनी सम्पूर्ण चल-अचल सम्पति-अर्पित कर सर्वस्व दान का उदाहरण प्रस्तुत किया। उस जमाने में जबकि रुपये का मूल्य आज से सैंकड़ों गुणा अधिक था, आपने लाखों रुपये की यह सम्पति अपने पिता की स्मृति को बनाए रखने के लिए अर्पित कर दी। उस सम्पत्ति को दान करते समय आपने शरीर पर धारण किए एक साधारण कम्बल को छोड़कर अपने पास कुछ न रखा। यह दृश्य बड़ा ही रोमांचक एवं हृदयद्रावक था किन्तु पितृऋण से मुक्त होने के लिए राय केदारनाथ ने जो त्याग ओर सर्वस्व अर्पण का मार्ग चुना, वह प्राचीन दधीचि व राजा बलि की पौराणिक गाथा को सजीव करने वाला था। आज के युग में तो इस प्रकार के आदर्श की कल्पना भी लगभग असम्भव है। उन्होंने ऐसा करके आदर्श पुत्र श्रवणकुमार को भी पीछे छोड़ दिया।

इसके साथ ही उन्हें जो पेंशन की राशि प्राप्त हुई, उसे संस्था के पास जमा करवा दिया तथा पति-पत्नी उसके ब्याज से ही जीवन निर्वाह करते रहे तथा पत्नी की मृत्यु के बाद उसे भी संस्थान को दे दिया।

यहां यह दृष्टव्य है कि लाला केदारनाथ ने जब अपना सर्वस्व दान कर दिया और अपने पास कुछ न रखा तो यह समाचार उनके एक पुराने शिष्य को मिला। वे दौड़े दौड़े

उनके पास आये और उनके निजी व्यय की पूर्ति हेतु सौ रू0 प्रतिमाह स्वीकार करने का अनुरोध किया। शिष्य के अत्यधिक आग्रह को देख कर उन्होंने केवल 25 रू0 मासिक की राशि ही लेना स्वीकार किया । यह उनकी उत्कृष्टतम त्याग वृति का श्रेष्ठ निदर्शन था। इस शिष्य का नाम हरिनारायण था, जो उस समय भारत के श्रेष्ठ वैज्ञानिक थे ।

आज इस शिक्षण संस्थान के अन्तर्गत 16 विद्यालयों, एक आवासीय विद्यालय, एक स्नातकोतर महाविद्यालय (रामजस पीजी कालेज) के साथ-साथ 35 एकड़ भूमि पर विशाल रामजस खेलकूद प्रशिक्षण एवं पर्वतारोहण संस्थान चल रहा है, जहां क्रिकेट, हॉकी आदि खेलों के साथ-साथ पर्वतोरोहण का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। सन 2008 मे 90 वर्ष पूर्ण होने पर यह संस्थान अपनी प्लेटिनम जुबली भी मना चुका है।

इस प्रकार राय केदारनाथ ने अपने शिक्षण संस्थानों के माध्यम से लाला रामजस के नाम को हमेशा के लिए अमर कर दिया तथा इन शिक्षण संस्थानों में शिक्षा पाने वाले हजारों बच्चे उन्हें अपने जीवन निर्माण के लिए बड़ी श्रद्धा से स्मरण करते तथा अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। निज वंश परम्परा में पैदा होने वाले पौत्र-प्रपौत्र भले ही अपने माता-पिता, पूर्वजों को भुला दें किन्तु इन शिक्षण संस्थानों में पढ़ कर अपने जीवन का निर्माण करने वाले हजारों लाखों बच्चे राय केदारनाथ और रामजस को कभी विस्मृत नहीं कर सकते, जिनकी वजह से वे अपने जीवन में सफलता की बुलन्दियों को छू सके। कृतज्ञतावश उनके मस्तक सदैव उनकी स्मृति में झुके ही रहेंगे।

राय केदारनाथ एवं लाला रामजस की यह गाथा उन हजारों दम्पतियों के लिए प्रेरणास्रोत हो सकती है, जो संतानाभाव के कारण वंशपरम्परा न चलने से दु:खी हैं। वे चाहें तो इससे प्रेरणा लेकर अपनी सम्पति के सदुपयोग द्वारा युगों-युगों के लिए अपना नाम अमर कर सकते हैं।

बंसल क्लॉसेज कोटा

एक प्रेरणास्पद व्यक्ति के जीवन की साहसिक गाथा

आज कोचिंग के क्षेत्र में बंसल क्लासेस, कोटा का पूरी दुनिया में नाम है तथा उसके कारण कोटा का उल्लेख कोचिंग, व्यावसायिक तथा आर्थिक केन्द्र के रूप में होता है। इसका श्रेय यदि किसी को हैं, तो वे हैं कोंचिग गुरू विनोदकुमार बंसल सर।

आपके जीवन की कहानी बड़ी ही प्रेरणास्पद एवं साहसिक है। परिस्थितियों से जूझते हुए आगे बढ़ने की है।

आपका जन्म 26 अक्टूबर 1945 को झांसी के के मध्यवर्गीय अग्रवाल परिवार में हुआ। हिन्दू विश्वविद्यालय से मेकेनिकल इंजीनियर की परीक्षा 1971 में उत्तीर्ण कर अपने जीवन का प्रारम्भ किया । तभी आपको 25 वर्ष की अवस्था में ही मांसपेशी अपंगता रोग हो गया और दोनो पैरों ने काम करना बंद कर दिया । आपने देश विदेश में इलाज करवाया । 25 वर्ष की आयु पूरी चुकी है। जिन्दगी के शेष जो भी 15-20 वर्ष बचे हैं, उन्हें व्हीलचेयर पर बिताओ। इसके अलावा कोई विकल्प नहीं है। तभी लन्दन के एक डॉक्टर ने आपको परामर्श दिया घर-पर पढ़ाओं और रोग को भूल जाओ। बस यही आपके रोग की सर्वोत्तम चिकित्सा है।

डॉक्टर की इस सलाह ने आपके लिए संजीवनी का काम किया। सुबह 9 बजे से साय: 5 बजे तक फैक्टरी में और 5 से रात्रि 9 बजे तक घर-पर बच्चों को कोचिंग, आपकी यह नियमित दिनचर्या बन गई। आपने प्रारम्भ में 9 वीं, 10वीं, 11 वीं छात्रों को पढाना शुरू किया किन्तु आपका यह कार्य मुख्य रूप से अर्थोपार्जन के लिए न होकर जीवनचर्या में परिर्वतन एवं रोग भुलाने के लिए था। लगातार 1971 से 81 तक यह क्रम चला। संयोग से 1985 में कोटा के एक राष्ट्रीय कोचिंग संस्थान में आपको अध्यापन का अवसर मिला। आपमे इससे नया आत्मविश्वास जागा और आपने पी.ई.टी. तथा आई. आई.टी के प्रवेशार्थी छात्रों को कोचिंग प्रारम्भ की। चयन में सफलता मिलने पर छात्रों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। 1986 में जो छात्र संख्या तीन थी, 1990 में बढकर 10 तथा 1999 में 209 हो गई। घर में स्थान की कमी होने पर समीप ही जगह लेकर एक नये कोचिंग संस्थान का निर्माण, जो बांसल क्लासेज के नाम से ख्यात हुआ। कठोर परिश्रम, लग्न एवं अध्यवसाय के कारण प्रौद्योगिकी इंजीनियरिंग एवं अन्य उच्च पाठ्यक्रमों में प्रवेश पाने वाले छात्रों की संख्या बढती ही गई। आपके द्वारा इस समय कोटा, अजमेर, तथा जयपुर तीन नगरों में कोचिंग सेंटरों एवं विशाल बंसल पब्लिक स्कूल का संचालन किया जा रहा है।

एक व्हीलचेयर और अपंगता से अपना जीवन प्रारम्भ कर कोंचिंग गुरू तक पहुंचने की आपकी यह जीवन गाथा अत्यन्त ही प्रेरक है। विशेष कर उन लोगों के लिए, जो परिस्थितियों के विपरीत होने का बहाना बना कर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं । आपका कथन है कि ऐसा कुछ कर दिखाओ, जिससे दुनिया तुम्हारी वाहवाही कर उठे। हर परिस्थिति में हौंसला बनाए रखो और प्रयास जारी रखो, क्योंकि हौंसला बनाए रखने से मंजिल आसान और प्रयास करने से जीवन की दिशा भी बदल जाती है। हिम्मत हार कर बैठना सबसे बडी कायरता है और यह रोग की ईलाज भी नहीं है। इसलिए हमेशा आगे बढने की बात सोचो।

-डॉ. चम्पालाल गुप्त, श्रीगंगानगर